॥ श्रीहरिः ॥

134

सती द्रौपदी

गीताप्रेस गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरि: ॥

सती द्रौपदी

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

हमारी सती-साध्वी पुण्यश्लोका देवियोंमें सती द्रौपदीका नाम बड़े आदरसे लिया जाता है। द्रौपदी सती तो थीं ही, साथ ही भगवान् श्रीकृष्णकी भक्त,' अत्यन्त बुद्धिमती, वीरांगना, शासन तथा युद्धमें भी मन्त्रणा देनेकी क्षमता रखनेवाली; राज्य, राजपरिवार और राज्यके समस्त अंगोंकी देख-रेख रखनेमें निपुण; लाखों हाथी-घोड़े, लाखों दास-दासियोंके नाम, काम आदिका पता रखनेवाली; आय-व्ययका सारा हिसाब रखनेमें चतुर; वक्तृता-शक्तिसे सम्पन्न; परम विदुषी और पति-सेवा परायणा थीं। इनका चरित्र अनेक दृष्टियोंसे आदरणीय और शिक्षाप्रद है। श्रीस्वामीजीने बहुत सरल और सुन्दर भाषामें इसे लिखा है। आशा है, हमारी माता-बहिनें और समस्त भाई इस उपादेय पुस्तकसे लाभ उठायेंगे।

विनीत—

प्रकाशक
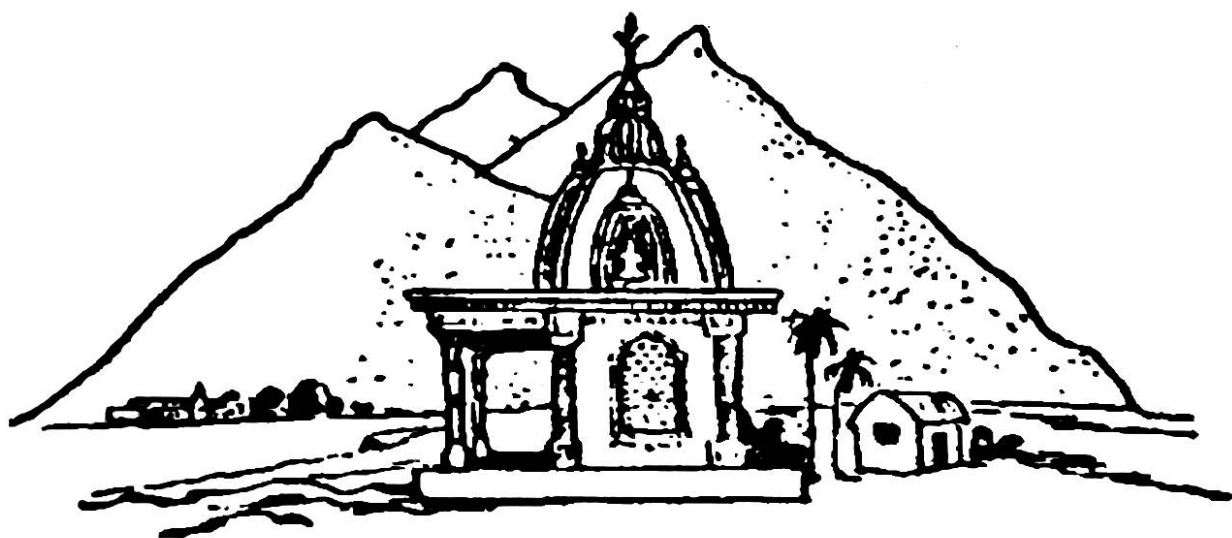
॥ श्रीहरि: ॥

सती द्रौपदी

(१)

सृष्टिके समय स्वयं भगवान् ही अपनेको दो रूपोंमें विभक्त कर देते हैं, एक पुरुषरूप और दूसरा स्त्रीरूप। जगत्‌की जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब इन्हीं दो रूपोंमें स्थित हैं। भगवान्‌के लिये दोनों ही अपने हैं, उनकी दृष्टिमें स्त्री और पुरुषमें कोई भेदभाव नहीं है। स्थितिके समय जगत्‌की रक्षा-दीक्षा, धर्म-संस्थापन और अधर्मनाशके लिये जैसे भगवान्‌के अवतार होते हैं, वैसे ही महापुरुषोंके भी होते हैं। जैसे युधिष्ठिर, अर्जुन आदि अनेकों महापुरुष भगवान्‌की इच्छा पूर्ण करनेके लिये अवतीर्ण होते हैं, वैसे ही अनेकों देवियाँ भी अवतीर्ण हुआ करती हैं। आर्य-जातिमें समय-समयपर ऐसी देवियाँ हुई हैं, जिन्होंने किसी भी दृष्टिसे जगत्‌का हित पुरुषोंकी अपेक्षा कम नहीं किया है। उनके कारण भारतभूमिका गौरव बढ़ा है और वे प्रात:स्मरणीया हो गयी हैं। आज भी उनके चरणोंकी धूलि सिरपर लगाकर जगत्‌के सभी स्त्री-पुरुष अपनेको धन्य बना सकते हैं। आर्य-जातिकी ऐसी रमणियोंमें द्रौपदीका स्थान बहुत ही ऊँचा है। द्रौपदी मूर्तिमान् शक्ति हैं, उनमें ओज और विनयका अद्भुत सम्मिश्रण है, आत्मसम्मान और सेवाका दुर्लभ संयोग है। प्रेम और व्यवहार-कुशलता उनमें एक साथ निवास करती हैं। वे सबको प्रसन्न रखना जानती हैं, सबके हृदयमें उत्साह और स्फूर्ति भरना जानती हैं, विरोधियोंकी एक-एक चाल पहचानती हैं। स्वयं अनेकों प्रकारके संकट सहकर दूसरोंको सुख देती हैं। वे अपने पतियोंपर अनन्य श्रद्धा, अनन्य प्रेम और अनन्य भाव रखती हैं; साथ ही भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अविचल श्रद्धा, परम प्रेम और पराभक्तिके जो भाव उनके हृदयमें

हैं, वे किसी भी ऊँचे-से-ऊँचे भक्तके लिये आदर्श हैं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। यहाँ हमें उन्हींका पुण्य दर्शन करना है।

द्वापरयुगके अन्तमें पंजाबकी राजधानी काम्पिल्य या छत्रवत नगरी थी। काम्पिल्य नगर आजकल उत्तर प्रदेशके फर्रुखाबाद जिलेमें फतेहगढ़से अट्ठाईस मील पूर्वोत्तर कोणपर है। उन दिनों इस राज्यके स्वामी महाराज पृषतके पुत्र द्रुपद थे। वे वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण और धनुर्वेदके अच्छे विद्वान् थे। वे युवक थे, शक्तिशाली थे और उनके मनमें बड़ा आत्मसम्मान था। एक क्षत्रियमें स्वभावतः जितने गुण होते हैं; वे सब द्रुपदमें विद्यमान थे। एक दिन सभा लगी हुई थी। महाराजके सामन्त और दरबारी वहाँ मौजूद थे। उसी समय द्रोणाचार्य परशुरामसे सब अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करके वहाँ पहुँचे। उन्होंने महाराज द्रुपदके साथ ही विद्याध्ययन किया था, विद्यार्थी-जीवनमें दोनोंकी बड़ी मित्रता थी। द्रोणाचार्यके आनेपर राजा द्रुपदने उनका कोई विशेष सत्कार नहीं किया। द्रोणाचार्यने सोचा, शायद द्रुपदने मुझे पहचाना न हो। उन्होंने कहा—'राजन्! क्या आपने मुझे पहचाना नहीं? मैं आपका सखा द्रोण हूँ।' द्रुपदने कुछ उपेक्षाके स्वरमें कहा—'ब्राह्मण! जो श्रोत्रिय नहीं, वह श्रोत्रियका; जो रथी नहीं, वह रथीका और जो राजा नहीं, वह राजाका सखा नहीं हो सकता। अब पहलेकी बात याद करना व्यर्थ है।' द्रोणाचार्यको इस अपमानसे बड़ा दुःख हुआ, वे उलटे पाँव लौट गये।

द्रोणाचार्यने हस्तिनापुरमें जाकर भीष्मके आग्रहसे पाण्डव और कौरवोंको धनुर्वेदका अभ्यास कराया। जब उनके शिष्य अस्त्रविद्यामें पूर्ण निपुण हो गये, तब उन्होंने पाण्डवोंसे यह गुरुदक्षिणा माँगी कि पृषतके पुत्र राजा द्रुपदको जीतकर और उनका राज्य छीनकर शीघ्र उन्हें मेरे पास ले आओ। पाण्डवोंने जाकर उन्हें जीत लिया और मन्त्रीके साथ उन्हें बाँधकर ले आये। इस युद्धमें विशेष भाग भीम और अर्जुनने लिया था। जब बँधे हुए द्रुपद द्रोणाचार्यके सामने लाये

गये, तब द्रोणने कहा—'राजन्! मैं फिर तुमसे मित्रताकी प्रार्थना करता हूँ। पहले तुमने राजा न होनेके कारण मुझे मित्रताके अयोग्य समझा था, अब गंगाके दक्षिणका राज्य तुम करो और उत्तरका राज्य मैं करूँ।' द्रुपदने स्वीकार कर लिया। एक प्रकारसे बाहर-बाहर दोनोंकी मित्रता स्थापित हो गयी, परंतु द्रुपद इस अपमानको नहीं भूल सके। वे इसी चिन्तामें दिनोंदिन सूखने लगे।

वे चाहते थे कि एक ऐसा पुत्र हो, जो द्रोणको पराजित कर सके। उन्होंने यह भी समझ लिया कि केवल क्षत्रियबलसे द्रोणाचार्यके प्रभाव, विनय, शिक्षा और चरित्रका पराभव नहीं किया जा सकता। अब वे ब्राह्मणोंकी सहायतासे मन्त्रद्वारा एक ऐसे पुत्रको प्राप्त करनेकी चेष्टामें लगे, जो द्रोणको मार सके। एक दिन वे गंगातटपर घूमते-घूमते कल्माषपाद राजाके नगरके पास एक आश्रममें गये। वहाँके सभी ब्राह्मण विद्वान् और ब्रह्मचारी थे। वहाँ सबसे श्रेष्ठ दो ब्राह्मण थे, एकका नाम था याज और दूसरेका उपयाज। उन दोनोंमें भी उपयाज अधिक तेजस्वी थे। राजा द्रुपद उन्हींकी सेवा करने लगे।

एक दिन द्रुपदने उपयाजसे प्रार्थना की कि आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे मुझे द्रोणको मारनेवाला पुत्र प्राप्त हो। यदि आप मेरा यह काम कर देंगे तो मैं आपको दस करोड़ गौएँ दूँगा अथवा आप जो चाहेंगे, वही दूँगा। उपयाजने कहा—'मैं नहीं कर सकता।' द्रुपद फिर एक वर्षतक उनकी सेवा करते रहे। उपयाजने कहा—'राजन्! तुम्हारा यह काम मैं नहीं कर सकता। तुम मेरे बड़े भाई याजके पास जाओ, वे शायद तुम्हारा काम कर दें। इसका एक कारण है, एक दिन वे वनमें घूम रहे थे। जमीनपर एक फल पड़ा हुआ था, उन्होंने उसे उठा लिया। उन्हें यह मालूम नहीं था कि वहाँकी भूमि पवित्र थी या अपवित्र। मैं उनके पीछे-पीछे जा रहा था। मैंने उनका यह अनुचित काम अपनी आँखों देखा; इसीसे मैं समझता हूँ कि वे दोषयुक्त वस्तुके ग्रहणमें भी नहीं हिचकेंगे। जिसने एक जगह

पवित्रताका विचार नहीं किया, वह दूसरी जगह भी उसे भूल सकता है। उनके मनमें लोभ है, वे लोभवश तुम्हारा काम कर देंगे।' द्रुपद याजके पास गये। यद्यपि याजपर उनकी श्रद्धा नहीं थी, फिर भी उन्हें अपना मतलब तो गाँठना ही था।

याजने द्रुपदकी बात मान ली, यज्ञ हुआ। हवन समाप्त होनेपर याजने रानीको बुलाया और कहा कि 'तुम शीघ्र ही यह अभिमंत्रित हविष्य ग्रहण करो, एक कन्या और एक पुत्र तुम्हें प्राप्त होगा।' रानीने कहा—ब्राह्मणदेव! इस समय मेरे मुँहमें दिव्य सुगन्धकी वस्तुएँ लगी हुई हैं, अंगोंको अंगरागसे अनुरंजित किया गया है; इसलिये स्नान किये बिना मैं यज्ञका हविष्य कैसे ग्रहण कर सकती हूँ। आप थोड़ी देर ठहर जाइये? याजने कहा—'तुम आओ या न आओ, कुछ हानि नहीं। मैं अभिमंत्रित हविष्य अग्निमें छोड़ता हूँ, यजमानकी इच्छा अवश्य ही पूर्ण होगी।' आहुति छोड़ दी गयी। उसी समय देवताओंके समान सुन्दर, अग्निके समान तेजस्वी, किरीट-मुकुटधारी, उत्तम कवच, खड्ग और धनुष-बाण धारण किये बारम्बार गर्जना करता हुआ एक कुमार यज्ञकुण्डकी अग्निसे प्रकट हुआ। वह उसी समय रथपर चढ़कर इधर-उधर विचरने लगा। पंजाब देशके लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। चारों ओर हर्षकी ध्वनि होने लगी। उस समय आकाशवाणी हुई कि यह कुमार पांचाल-राजवंशका यश बढ़ावेगा और इसीके हाथोंसे द्रोणाचार्यकी मृत्यु होगी। इसी कुमारका नाम धृष्टद्युम्न पड़ा।

इसके बाद एक अनिन्द्य सुन्दरी कुमारी भी प्रकट हुई। उसके सभी अंग बड़े सुन्दर थे। कमल-दलके समान सुन्दर नेत्र थे, लम्बे-लम्बे घुँघराले बाल थे। लाल-लाल नख कुछ उभरे हुए थे, भौंहें बहुत ही मनोहर थीं, उसे देखकर ही उसके सौभाग्यका अनुमान हो जाता था। ऋषियोंने जान लिया कि यह परम सौभाग्यवती स्वर्गकी लक्ष्मी ही शरीर धारण करके प्रकट हुई है। उस कुमारीके

शरीरसे नीले कमलकी मनोहर सुगन्ध निकलती रहती थी और आसपास कोसभरतक फैली रहती थी। उसके शरीरका रंग साँवला था, परंतु वैसी सुन्दर स्त्री पृथ्वीमें कहीं देखी नहीं गयी। सभी उसके सौन्दर्यका बखान करते थे। उसके प्रकट होनेपर आकाशवाणी हुई कि यह स्त्रीरत्न कृष्णा क्षत्रियवंशके नाशका कारण होगी, इसीलिये इसकी सृष्टि हुई है। समय आनेपर इसके द्वारा देवताओंका कार्य सिद्ध होगा। देवताओंके लिये हितकर और दैत्योंके लिये यह भयानक होगी। कौरवोंके लिये यह बड़ी भय देनेवाली होगी। आकाशवाणी सुनकर चारों ओर जय-जयकार होने लगा। वहाँके लोग हर्षके मारे इतना अधिक उछलने-कूदने लगे कि मालूम हुआ पृथिवी हिल जायगी।

जब रानीने देखा कि मेरे बिना ही यज्ञकुण्डसे कुमार और कुमारी उत्पन्न हो गये, तब वह याजकी शरणमें आयी। उसने प्रार्थना की—'भगवन्! मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि ये दोनों बच्चे मुझे ही अपनी माता समझें। याजने राजाकी प्रसन्नताके लिये कह दिया—अच्छा ऐसा ही होगा।' हुआ भी वैसा ही। उस कुमारीका नाम साँवला रंग होनेके कारण कृष्णा पड़ा, द्रुपदकी पुत्री होनेके कारण द्रौपदी हुआ। यज्ञकी वेदीसे उत्पन्न होनेके कारण याज्ञसेनी हुआ अथवा द्रुपदका ही एक नाम यज्ञसेन था, इसलिये भी द्रौपदीको याज्ञसेनी कहते हैं।

द्रौपदीमें जन्मसे ही अनेकों दिव्य गुण थे। उसमें स्वाभाविक ही दैवी सम्पत्तियाँ निवास करती थीं। वह माता-पिताकी सेवा करती, गुरुजनोंका सम्मान करती, बिना अवसरके व्यर्थ न बोलती, जो कुछ बोलती, खूब समझकर बोलती, समयको पहचानती, नीतिका ज्ञान रखती और अनेक दास-दासियोंके रहनेपर भी अपना सब काम स्वयं ही कर लेती थी। द्रौपदीसे सभी प्रसन्न रहते थे। उससे सभी प्रेम करते थे, वह सभीकी लाड़ली थी।

द्रौपदीका श्यामसुन्दर शरीर देखकर द्रुपदको अर्जुनकी याद आ

जाया करती थी। द्रुपदने अर्जुनको युद्धमें देखा था, द्रोणकी प्रेरणासे अर्जुनने द्रुपदपर विजय प्राप्त की थी; परंतु द्रुपदके मनमें अर्जुनके प्रति कोई द्वेष नहीं था। वे उनके गुणसे, युद्ध-कौशलसे, पराक्रमसे, शरीरकी सुन्दर गठनसे प्रभावित थे। वे अर्जुनके कृष्णरूपपर भी मुग्ध थे, उनके मनमें कई बार यह बात आती कि यदि कृष्णा—द्रौपदीका विवाह अर्जुनसे होता तो कितना अच्छा होता; परंतु वे इस बातसे निराश थे। इसका कारण यह था कि उन दिनों यह बात चारों ओर फैल गयी थी कि पाँचों पाण्डव वारणावतके लाक्षागृहमें जलकर मर गये। कोई-कोई यह बात भी कह जाते थे कि पाण्डव अभी मरे नहीं हैं। वे कहीं-न-कहीं हैं। यह सुनकर उनकी आशा-लता फिर हरी हो जाती। इस द्विविधामें वे कुछ दिनोंतक पड़े रहे। आखिर उन्होंने एक युक्ति ढूँढ़ निकाली। उन्होंने सोचा कि अपनी कन्याका स्वयंवर इस प्रकार करें कि स्वयं अर्जुन अथवा अर्जुन-जैसे वीर ही मेरी कन्याको प्राप्त कर सकें। बहुत सम्भव है कि अर्जुन ही आ जायँ; तब तो मेरी अभिलाषा ही पूरी हो जायगी; परंतु द्रुपदने यह बात और किसीसे कही नहीं।

द्रुपदने एक बड़ा ही ठोस धनुष बनवाया, जिसे सब कोई न झुका सकें। एक कृत्रिम यन्त्र बनवाया और उसे ऊपर टँगवा दिया। वह चक्राकार था और निरन्तर घूमता रहता था। उस यन्त्रके ऊपर एक मछली रखवा दी और यह घोषणा करवा दी कि जो वीर इस धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ायेगा और बाणके द्वारा चक्रके छिद्रके भीतरसे उस मछलीको वेध देगा, वही द्रौपदीको प्राप्त कर सकेगा। साथ ही यह शर्त भी रख दी कि निशाना लगते समय मछलीकी ओर नहीं देखना होगा। नीचे पानीके कुण्डमें मछलीकी परछाईं देखकर ही बाण चलाना होगा। स्वयंवरका दिन निश्चित हो गया, चारों ओरसे राजा और राजकुमार आने लगे और द्रुपद अर्जुनकी प्रतीक्षा करने लगे।

× × × ×

(२)

भगवान्की लीलाका रहस्य स्वयं भगवान् ही समझते हैं। दूसरे लोगोंकी दृष्टिमें जो हित प्रतीत होता है, वह अहित हो जाता है और जो अहित प्रतीत होता है, वह हित हो जाता है। मनुष्य करना चाहता है कुछ और हो जाता है कुछ। इसीसे जो लोग सब कुछ भगवान्पर छोड़कर निश्चिन्त हो जाते हैं और हित-अहित दोनों प्रकारकी परिस्थितियोंमें भगवान्का खेल देख-देखकर मुग्ध होते रहते हैं, वे ही संत हैं। धर्म-अधर्म, कर्म-अकर्म, हित-अहित—जो कुछ भगवान् करें-करायें, वही देखते रहें, उसीमें प्रसन्न होते रहें। वास्तवमें ये सब बातें भगवान्को ही मालूम हैं, उन्हींके सामने सब हो रही हैं। उनके सामने अन्याय और अनर्थ होनेकी तो सम्भावना ही नहीं है। होता है वही, जो होनेवाला है; लेकिन लोग कुछ होनेके पहले ही अपनी इच्छाके अनुसार कराना चाहते हैं—करना चाहते हैं, उसका कर्तृत्व अपने सिरपर ले लेते हैं, इसीसे दुःखके—पापके भागी होते हैं। सच्ची बात तो यह है कि जो कुछ प्रभुके सामने हो रहा है, उसमें दोष निकालना प्रभुका तिरस्कार करना है। वे अहित प्रतीत होनेवाली घटनाओंमें भी किस प्रकार हितका बीज अन्तर्हित रखते हैं, यह बात हम पाण्डवोंके जीवनमें देख सकते हैं।

न्यायदृष्टिसे हस्तिनापुरके राज्यके उत्तराधिकारी पाण्डव ही थे। समय-समयपर श्रीकृष्ण, व्यास, भीष्म, द्रोण, विदुर आदिने इसका समर्थन किया है; फिर भी वे हस्तिनापुरसे वारणावत भेज दिये गये और वहाँ लाक्षागृहमें रखकर उन्हें जलानेकी चेष्टा की गयी। मनुष्यकी बुद्धिने सोचा कि 'इससे हमारा राज्य निष्कण्टक हो जायगा।' पर पाण्डव जले नहीं और जलानेकी इच्छावाला जलानेका दोषभागी हो गया। पाण्डव अपनी माता कुन्तीके साथ वहाँसे निकल गये और भगवान् वेदव्यासकी सलाहसे एकचक्रा नगरीमें आकर रहने लगे। जिन्हें एक विशाल राज्यका शासन करना चाहिये था, वे

भिखारी हो गये। भिक्षा माँगकर ले आते, माँकी आज्ञासे उसे खाते। ऊपर-ऊपरकी दृष्टिसे देखें तो पाण्डवोंका अहित हुआ, परंतु भगवान्‌की यह लीला पाण्डवोंके हितके लिये ही थी। हाँ, यह बात अवश्य थी कि जिन्होंने उन्हें इस परिस्थितिमें डालनेकी चेष्टा की वे तो अपने कर्मफलके भागी हुए ही। एकचक्रा नगरीमें पाण्डवोंने किस प्रकार निर्वाह किया, इस यात्रामें उन्होंने कितने कुटुम्बोंकी रक्षा की, अपना कुटुम्ब कितना अधिक बढ़ाया—यह चर्चा प्रासंगिक नहीं है। हमें तो केवल द्रौपदीके जीवनसे सम्बद्ध घटनाओंको ही लेना है। एकचक्रा नगरीमें ही एक ब्राह्मणने आकर ब्राह्मणवेषधारी पाण्डवोंसे द्रुपदके यहाँ स्वयंवर होनेवाला है, उनकी कन्या अद्‌भुत रीतिसे पैदा हुई है, वह कौरवोंके लिये भयानक है इत्यादि बातें बतायीं। पाण्डवोंने अपनी माता कुन्तीकी आज्ञा लेकर द्रुपदकी राजधानीके लिये यात्रा शुरू कर दी।

जब पाण्डव ब्राह्मण-वेशमें छिपकर एकचक्रा नगरीमें उस ब्राह्मणके घर रहते थे, तब एक दिन व्यासदेव पधारे। स्वागत-सत्कार और कुशल-प्रश्नके पश्चात् उन्होंने कहा—'पुराने जमानेमें एक तपोवनमें बड़े तपस्वी ऋषि रहते थे, उनकी एक कन्या थी, वह बड़ी सुन्दरी तथा गुणवती थी; परंतु पूर्वजन्मके कर्मोंके कारण उसका प्रारब्ध अच्छा नहीं था। उस अनुपम सुन्दरीको उसके योग्य कोई पति नहीं मिला। वह अत्यन्त दुःखित होकर पति प्राप्त करनेके लिये भगवान् शंकरकी आराधना करने लगी। भगवान् शंकर प्रसन्न होकर उसके सामने आये और बोले—'देवि! तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो।' उस समय वह तपस्विनी कन्या आनन्दके कारण इतनी आत्मविस्मृत हो गयी कि वह पाँच बार कह गयी—'मुझे पति दो, मुझे पति दो।' भगवान् शंकरने कहा—'तुमने पाँच बार 'पति दो, पति दो' कहा, इसलिये तुम्हें पाँच पति प्राप्त होंगे। तुम्हारी प्रार्थना निष्फल नहीं हो सकती। तुम्हारी इच्छाके अनुसार तुम्हें सब गुणोंसे भूषित

पाँच पति प्राप्त होंगे।' इतना कहकर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये। 'वही कन्या द्रुपदके यहाँ यज्ञवेदीसे पैदा हुई है, वही सर्वांग-सुन्दरी कृष्णा तुमलोगोंकी पत्नी होगी। यह बात पहलेसे ही निश्चित है, इसलिये तुमलोग पांचालराजके नगरमें जाओ और द्रौपदीको प्राप्त करो। तुम द्रौपदीके द्वारा सुखी हो सकोगे।' व्यासदेव चले गये।

व्यासदेवने जिस तपस्विनी कन्याका वर्णन किया, वह कौन थी और उसका क्या नाम था—यह बात महाभारतमें नहीं लिखी है यद्यपि यह कथा महाभारतमें एक बारसे अधिक कही गयी है। ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्ण-जन्म-खण्डमें यह कथा इस प्रकार आती है—रावणने दिग्विजय करनेके समय वेदवती नामकी एक कन्याका अपमान किया था। वह कन्या बृहस्पतिकी पौत्री और कुशध्वजकी लड़की थी। रावणके अपमानसे उसे बड़ा दुःख हुआ और उसने रावणको शाप दे दिया कि मेरे ही कारण तुम्हारा सत्यानाश होगा। त्रेतायुगमें जब भगवान् श्रीरामका अवतार हुआ और वे वनमें गये, तब उन्होंने रावण-वधके लिये सीताको अग्निदेवके सुपुर्द कर दिया। भगवान्ने सीताकी छाया स्थापित कर ली, वह वेदवती ही छायाके रूपमें प्रकट हुई थी। रावणने उसी छायाका हरण किया था। जब लंका-विजय करनेके पश्चात् छाया-सीताकी अग्नि-परीक्षा हुई, तब अग्निने सच्ची सीताको प्रकट कर दिया। वह छाया नारायण-सरोवरमें सौ वर्षतक तपस्या करती रही। उसीके सामने महादेवजी प्रकट हुए और उससे कहा कि भगवान्के अंशस्वरूप पाँच इन्द्र प्रकट होंगे और वे ही तुम्हारे पति होंगे; क्योंकि तुमने पाँच बार पति प्राप्त करनेके लिये वरदान माँगा है। वही द्रौपदीके नामसे पैदा हुई। वह वेदवती स्वर्गकी लक्ष्मी थी, उसकी कथा आगे आयेगी। यहाँ केवल इतना ही स्पष्ट कर देना था कि स्वर्गकी लक्ष्मी ही वेदवती और छाया बनी तथा शंकरजीके वरप्रभावसे उसीने द्रौपदीके रूपमें जन्म लिया। यह भगवान्की ही एक विशेष शक्ति है, जो स्वर्गको सुन्दर बनाती है,

धर्मकी स्थापना और अधर्मके विनाशमें सहायक होती है। उसकी प्राप्तिके लिये पाण्डव यात्रा कर रहे हैं।

पाण्डव स्वयंवरके समयसे पहले ही पांचाल नगरमें पहुँच गये। द्रुपदके नगर और उसकी चहारदीवारी देखकर पाण्डवोंने नगरके छोरपर ही एक कुम्हारके घर रहना निश्चय किया, वे वहीं रहने लगे। वे उस समय ब्राह्मण-वेषमें थे। भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करते थे। उनकी प्रकृति बड़ी कोमल थी, स्वभाव बड़ा मधुर था। बहुत कम बोलते थे। जो कुछ कहते सच्चे हृदयसे कहते और बड़ी प्रिय मधुर भाषामें कहते। वे प्रतिदिन नियमसे स्वाध्याय करते थे। उनके आचरणको देखकर कोई पहचान नहीं सकता था कि ये क्षत्रिय हैं।

स्वयंवरकी घोषणा तो पहले ही हो चुकी थी। देशके राजा और राजकुमार आने लगे। बहुत-से ऋषि-महात्मा और ब्राह्मण भी स्वयंवर देखनेके लिये आये। स्वयंवरका दिन आया, सब लोग यथास्थान बैठ गये। स्वयंवरमें उपस्थित राजाओंकी सूची बड़ी लम्बी है, यहाँ केवल कुछ नाम दे दिये जाते हैं— श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न, साम्ब, अनिरुद्ध, अक्रूर, सात्यकि, उद्धव, शिशुपाल, जरासन्ध, शल्य, भगदत्त, रुक्मी, दुर्योधन, कर्ण, अश्वत्थामा, भीष्म, शकुनि आदि-आदि। महाराज द्रुपदने सबकी आवभगत की। नगरवासी प्रजा और दर्शक भी आकर यथास्थान बैठ गये। उस भीड़का कोलाहल उमड़े हुए समुद्रकी भाँति चारों ओर सुनायी पड़ रहा था।

वह सभामण्डप नगरके सामने ही पूर्वोत्तर कोणपर समतल विशुद्ध भूमिमें बनाया गया था। उसके चारों ओर सुन्दर-सुन्दर भवन थे। दीवार, खाई, फाटक, बंदनवार और तम्बुओंसे उसकी शोभा अद्भुत हो गयी थी। अगुरु-धूपकी सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी; तुरही, नगारे बज रहे थे, चन्दनका छिड़काव किया गया था, फूलकी मालाएँ टँगी हुई थीं, वस्त्रोंके सुन्दर-सुन्दर महल और मंच आकाशसे

बातें कर रहे थे, सुनहले परदे लगे हुए थे, मणिमण्डित बैठकें थीं, बहुमूल्य आसन थे। उनमें आने-जानेकी रोक-टोक बिलकुल नहीं थी, सबमें उत्तम पलँग और खाने-पीनेकी सामग्रियाँ रखी हुई थीं। सभी राजा मानो आपसमें होड़ लगाकर एक-से-एक सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित थे। पाण्डव भी एक ओर ब्राह्मणोंकी श्रेणीमें बैठकर द्रुपदके ऐश्वर्य और अनुपम समृद्धिको देख रहे थे।

द्रौपदी नवीन और सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होकर सुवर्णमयी जयमाला हाथमें लिये रंगभूमिमें आयी। कुलगुरुने मन्त्र पढ़कर अग्निमें आहुति डाली, ब्राह्मणोंने स्वस्त्ययन-पाठ किया, सब बाजे बंद हो गये, सारी सभामें सन्नाटा छा गया। धृष्टद्युम्नने मेघगम्भीर ध्वनिसे घोषणा की—'उपस्थित नरपतियो और राजकुमारो! यह निशाना है, ये पाँच बाण हैं और यह धनुष है। मैं सत्य कहता हूँ कि जो सत्कुल, रूप और बलसे युक्त पुरुष इन पाँच बाणोंके द्वारा इस यन्त्रके भीतरसे निशानेको काटकर गिरा देगा, वही पुरुष मेरी बहिनको प्राप्त कर सकेगा।' धृष्टद्युम्नने उपस्थित नरपतियोंका परिचय दिया और अपनी बहिन द्रौपदीको सम्बोधन करके कहा—'बहिन! इस लक्ष्यको जो वेध देगा, उसीको तुम पतिरूपसे वरण करना।'

द्रौपदीको प्राप्त करनेके लिये सभी राजा व्याकुल हो गये। सब एक-दूसरेकी ओर देखकर ऐसी भावभंगी प्रकट कर रहे थे कि द्रौपदी मेरी ही होगी। मित्र और सम्बन्धी राजा भी एक-दूसरेको डाहसे देखने लगे और वे सब द्रौपदीको प्राप्त करनेके उद्योगमें लग गये; बड़े-बड़े देवता और गन्धर्व भी उस समाजमें आये। केवल भगवान् श्रीकृष्ण और उनके साथ आये हुए लोग चुपचाप बैठे रहे। श्रीकृष्णने ब्राह्मणोंके बीचमें बैठे हुए पाण्डवोंको पहचान लिया और बलरामको दिखा दिया। बलरामने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। वास्तवमें भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंके लिये ही यहाँ आये थे। दूसरे राजाओंकी दृष्टि द्रौपदीकी ओर थी, इसीसे किसीकी दृष्टि पाण्डवोंपर नहीं पड़ी।

दुर्योधन, शाल्व, अश्वत्थामा आदि तो धनुषपर प्रत्यंचा ही नहीं चढ़ा सके। वे धनुषके झटकेसे पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके मुकुट और हार शरीरसे गिर पड़े, वे लम्बी साँस लेकर अपने-अपने स्थानपर बैठ गये।

कर्ण रंगभूमिमें आया, उसने पलक मारते-मारते धनुषपर डोरी चढ़ा ली, बाण भी चढ़ा लिया। अग्नि, चन्द्र और सूर्यके समान तेजस्वी कर्णको धनुषपर बाण चढ़ाते देखकर पाण्डवोंने सोचा, अब लक्ष्य कटकर पृथ्वीपर गिरनेवाला ही है। इसी बीचमें ऊँचे स्वरसे द्रौपदी बोल उठी—'मैं सूतपुत्रको कदापि वरण न करूँगी।' द्रौपदीकी बात सुनकर कर्णको बड़े अपमानका बोध हुआ, वह क्रोधसूचक हँसी हँसकर धनुष वहीं रखकर अपने स्थानपर लौट आया। बहुत राजाओंके असफल होनेपर चेदिदेशके राजकुमार शिशुपाल उठे। उन्होंने धनुषपर डोरी चढ़ानेकी चेष्टा की, परंतु वे सफल न हुए। दोनों घुटनोंके बल जमीनपर जा रहे। उन्हींकी भाँति जरासन्ध और शाल्व भी हँसीके पात्र बने। जब क्षत्रियोंमेंसे और कोई नहीं उठा, तब ब्राह्मणोंकी मण्डलीमेंसे अर्जुन उठ खड़े हुए। उस समय अर्जुनके पुष्ट शरीरको देखकर ब्राह्मणलोग अपनी मृगछाला उछाल-उछालकर हर्षध्वनि करने लगे। कुछ लोग यह सोचकर उदास हो गये कि जब धनुर्वेदके जानकार जरासन्ध, शिशुपाल और दुर्योधन ही सफल नहीं हुए तब इस ब्राह्मणकी सफलता कैसे सम्भव है। कुछ ब्राह्मणोंने ब्राह्मणकी तपस्या, शक्ति, उत्साह आदिका वर्णन करके कहा कि सब लोग मिलकर इस ब्राह्मणको आशीर्वाद दें कि यह अपने कार्यमें सफल हो सके। ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिया—'इसे सफलता प्राप्त हो।'

अर्जुन धनुषके पास पहुँच गये। उन्होंने भक्ति-नम्र हृदयसे उसकी प्रदक्षिणा की, भगवान् शंकरको नमस्कार किया, श्रीकृष्णका स्मरण किया और धनुषको उठा लिया। बड़े-बड़े वीर जिसपर डोरी चढ़ानेमें असमर्थ थे, अर्जुनने जब उसपर डोरी चढ़ा ली; तब लोगोंने देखा। पाँच बाण उठाये और फुर्तीके साथ उस निशानेको उड़ा दिया। वह

कृत्रिम मछली चक्रयन्त्रके भीतरसे जमीनपर गिर पड़ी। आकाश और सभामण्डप आनन्द और कोलाहलकी ध्वनिसे भर गया। देवताओंने अर्जुनपर स्वर्गीय पुष्पोंकी वर्षा की। आकाशसे इतने फूल बरसे कि पृथ्वी पुष्पमयी हो गयी। बाजे बजने लगे, सूत-मागध मधुर स्वरसे स्तुति-गायन करने लगे, ब्राह्मणोंने अपने-अपने वस्त्रोंके छोर हिलाकर हर्ष प्रकट किया। राजाओंने गड़बड़ करनी चाही; परंतु द्रुपदने उन्हें रोक दिया, वे अपनी सेनाके साथ अर्जुनकी रक्षा करनेको तैयार हो गये। कोलाहल मचनेपर धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवको लेकर डेरेपर चले गये। द्रौपदीने वरमाला अर्जुनको पहना दी। द्रौपदी अर्जुनके पीछे खड़ी हो गयी। वे द्रौपदीके साथ रंगभूमिके बाहर आये।

राजाओंने आपसमें सलाह की कि इतने राजाओंके होते हुए भी द्रुपद एक भिखारी ब्राह्मणको अपनी कन्या दे रहे हैं, यह हमलोगोंका अपमान है। आओ, हम द्रुपदको मार डालें; उनकी कन्या यदि दूसरेसे विवाह नहीं करना चाहती तो उसे आगमें जला डालें। ब्राह्मणको तो हम मार नहीं सकते, द्रुपदको अवश्य दण्ड देना चाहिये। यही न्यायसंगत है; क्योंकि आगे फिर हमारा अपमान न हो, क्षत्रियधर्मकी रक्षा हो और अन्य स्वयंवरोंकी भी ऐसी दशा न हो। सब लोग द्रुपदपर टूट पड़े। उस समय धनुषको धारण करके भीमसेन और अर्जुन सामने खड़े हो गये। भीमसेनने एक वृक्ष उखाड़ लिया और वे अर्जुनके पास खड़े होकर विपक्षियोंके आक्रमणकी बाट देखने लगे। श्रीकृष्णने भीमके असाधारण कर्मको देखकर बलरामसे कहा—'भैया संकर्षण! यह जो सिंहके समान अपना पराक्रम प्रकट कर रहे हैं, जिनके हाथमें पाँच हाथसे कुछ ही छोटा धनुष है, वे अर्जुन हैं। जो बलपूर्वक वृक्ष उखाड़कर उनके पास खड़े हैं, वे भीमसेन हैं। युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवको जाते समय तुमने भी देखा ही है। मैं ठीक-ठीक पहचान रहा हूँ। बड़ा अच्छा हुआ कि ये लोग

लाक्षाभवनसे सकुशल बच आये हैं।' बलरामने उनकी बातोंका समर्थन किया।

दुर्योधन और कर्ण आये। कर्ण और अर्जुनका युद्ध होने लगा। कर्ण उनके सामने युद्धमें ठहर नहीं सके। वे ब्रह्मतेजको जीतना असम्भव है, यह कहकर युद्धभूमिसे हट गये। शल्यको घूँसे मारकर भीमसेनने जमीनपर गिरा दिया, ब्राह्मणलोग हँसने लगे। शल्य, कर्ण और दुर्योधनको परास्त होते देखकर सभी राजा चकित एवं स्तम्भित हो गये। श्रीकृष्णने सबको यह कहकर समझा दिया कि 'इन्होंने धर्मानुसार ही द्रौपदीको प्राप्त किया है।' सब अपने-अपने देशको गये! द्रौपदीको लेकर अर्जुन और भीमसेनने अपने डेरेकी यात्रा की।

आज बहुत रात बीत गयी थी। रोज भिक्षा लेकर आनेका समय बीत गया था। पुत्रस्नेहके कारण कुन्ती घबरा रही थीं; वे सोच रही थीं कि कहीं कौरवोंने मेरे पुत्रोंको पहचानकर उनकी हत्या तो नहीं कर डाली या वैरको कभी न भूलनेवाले मायावी राक्षसोंने मेरे पुत्रोंका कुछ अनिष्ट तो नहीं किया। सम्भव है और किसी प्रकार उनका अनिष्ट हो गया हो, परंतु क्या व्यासकी बात भी व्यर्थ हो सकती है? कुन्ती इसी प्रकार सोच-विचार कर रही थीं कि भीमसेनने पुकारकर कहा—'माता! हम भिक्षा लेकर आ गये हैं।' कुन्ती घरके भीतर थीं, उन्होंने बिना देखे ही कह दिया—'बेटा! सब लोग मिलकर उसका उपयोग करो।' जब वे कुटीके बाहर आयीं और उन्होंने देखा कि यह तो द्रौपदी है, तब वे कहने लगीं कि 'बिना समझे-बूझे मैंने क्या कह दिया, मेरे मुँहसे कैसी बात निकल गयी।' कुन्ती असत्यके भयसे चिन्तित हो गयीं।

वे द्रौपदीका हाथ पकड़कर युधिष्ठिरके पास गयीं और कहने लगीं कि 'बेटा! आज तो मुझसे एक प्रमाद हो गया। मेरे मुँहसे बिना समझे-बूझे एक बात निकल गयी। अर्जुन और भीमने द्रौपदीको

लाकर मुझसे कहा कि यह भिक्षा है। मैंने रहस्यको जाने बिना भिक्षा समझकर उचित आज्ञा दे दी कि तुम सब मिलकर उसका उपयोग करो। सो युधिष्ठिर! अब कोई ऐसा उपाय करो कि मेरी बात झूठी न हो। अपने जीवनमें आजतक कभी अनजानमें भी मैंने झूठ नहीं कहा है। साथ ही द्रौपदीके धर्मकी भी चिन्ता है। किसी भी प्रकार अधर्म उसका स्पर्श न करे। अब यह बात तुम्हारे ही अधीन है।' युधिष्ठिर विचार करने लगे।

थोड़ी देरके बाद अर्जुनको बुलाकर उन्होंने कहा—'भाई अर्जुन! तुमने अपने बाहुबलसे द्रौपदीको प्राप्त किया है, तुम्हींसे यह सौभाग्यवती होगी, तुम अग्निको साक्षी देकर विधिपूर्वक इसका पाणिग्रहण करो।' अर्जुनने कहा—'राजन्! आप क्या कह रहे हैं! मुझे अधर्मका भागी मत बनाइये। आजतक अच्छे पुरुषोंमें ऐसा कभी नहीं हुआ है कि बड़ा भाई अविवाहित रहे और छोटा भाई विवाह कर ले। पहले आप, उसके बाद भीम और फिर मैं विवाह कर सकता हूँ। हम सब आपके आज्ञाकारी हैं। हमारा जो कर्तव्य हो, जिससे धर्म और यशकी हानि न हो, द्रुपदका हित हो, वही आज्ञा कीजिये। हम सब आपकी आज्ञाका पालन करेंगे।'

युधिष्ठिर भाइयोंके मनका भाव देख रहे थे, उन्हें व्यासदेवकी बात भी याद हो आयी। पूर्वजन्मके कर्मका रहस्य उनसे छिपा न रहा। वे सोचने लगे कि धर्मकी दृष्टिसे माताकी आज्ञा सर्वोपरि है। अर्थकी दृष्टिसे भाइयोंमें विरोध नहीं होना चाहिये। परलोक और कामकी दृष्टिसे व्यासदेवकी आज्ञा ही प्रमाण है। बहुत सोच-विचारकर उन्होंने कहा—'माताकी आज्ञाके अनुसार द्रौपदी हम पाँचों भाइयोंकी पत्नी हो।' पाण्डवोंने बड़े भाईकी इस आज्ञाको उसी समय अपना कर्तव्य ठहरा लिया।

श्रीकृष्ण और बलराम पाण्डवोंके पीछे-पीछे उनके डेरेपर आये। युधिष्ठिर और कुन्तीको अपना नाम बतलाकर प्रणाम किया। पाण्डवोंको

बड़ी प्रसन्नता हुई; सबने उनका स्वागत-सत्कार किया। युधिष्ठिरने पूछा—'श्रीकृष्ण! तुमने हमलोगोंको पहचाना कैसे? हमलोग तो छिपकर भिखारी ब्राह्मणके वेशमें अपना जीवन बिता रहे हैं।' श्रीकृष्णने मुसकराकर कहा—'धर्मराज! आग लाख छिपी रहे, उसे लोग जान ही लेते हैं। पाण्डवोंके अतिरिक्त कौन ऐसा वीर है, जो इस प्रकार अपना पराक्रम प्रकट करे। हमारे लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपलोग आगसे बच गये और सकुशल हैं। दुरात्मा दुर्योधनकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई, यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। आपका अभ्युदय होगा; मैं भी यही चाहता हूँ कि आपलोग इस वेशमें पहचाने न जायँ। अब जाता हूँ। आज्ञा दीजिये। श्रीकृष्ण और बलराम अपने डेरेपर चले आये।

अब भिक्षापर विचार हुआ। कुन्तीने द्रौपदीसे कहा—'कल्याणी! इस भिक्षान्नसे देवताओंकी पूजा करो। ब्राह्मणोंको खिलाओ; जो कोई भोजनकी इच्छासे आया हो उसे भोजन कराओ। जो बचे, उसके दो हिस्से करो। एक हिस्सा भीमसेनको खिला दो और दूसरे हिस्सेको छः भागमें विभक्त कर दो, उनको मैं, तुम और ये चारों भाई खायेंगे। द्रौपदीने वैसा ही किया। सबने भोजन किया और फिर सब अपनी-अपनी मृगछाला बिछाकर लेट गये। पाण्डव दक्षिणकी ओर सिरहाना करके सोये, उनके सिरकी ओर कुन्ती सोयीं! द्रौपदी पाण्डवोंके पैरोंकी ओर कुशपर सो गयी। सोनेका मणिजटित पलँग और मखमली शय्यापर सोनेवाली द्रौपदी पैरोंके पास जमीनमें सोयी; परन्तु न तो उसके मनमें तनिक भी दुःख हुआ और न तो पाण्डवोंके प्रति अनादरका भाव ही आया। लेटकर पाण्डवलोग तरह-तरहकी बात करने लगे। उनकी चर्चाका विषय क्षत्रियोचित था। द्रौपदी मन लगाकर सुन रही थी। बात बंद हुई, तब भगवान्‌का स्मरण करते हुए सब सो गये।

(३)

धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म है। कौन-सा कर्म धर्मानुकूल है और

कौन-सा प्रतिकूल है, यह समझना बड़े-बड़े लोगोंके लिये भी कठिन है। सत्य, क्षमा, त्याग आदि धर्मके नित्य स्वरूप हैं। वे सब देशमें, कालमें और सब व्यक्तियोंके लिये समान होते हैं। उनका स्वरूप सुगम होनेपर भी उनका व्यवहार बड़ा कठिन है। विशेष धर्ममें बड़ी-बड़ी बाधाएँ हैं। व्यवहारमें सुगम होनेपर भी उनका समझना बड़ा कठिन है। वह देश, काल, पात्र, अवस्था, शक्ति आदिके भेदसे भिन्न-भिन्न प्रकारका हुआ करता है; इसलिये किसको कब क्या करना चाहिये—यह निर्णय करना कठिन हो जाता है। एक ही व्यक्तिके लिये भिन्न-भिन्न देशोंमें, भिन्न-भिन्न कालोंमें, भिन्न-भिन्न प्रकारके धर्म कहे गये हैं। एक ही जातिके विभिन्न व्यक्तियोंके लिये धर्मका विशेष भेद हो जाता है। किसी भी उन्नत जातिमें, किसी भी सभ्यतामें एक स्त्रीके कई पति हों—यह आदर्श नहीं है; परंतु भगवान्की इच्छा, पूर्वजन्मके कर्म, परिस्थिति आदिसे द्रौपदीके लिये वही बात धर्मसंगत हो जाती है। माताके सत्यकी रक्षा, गुरुजनोंका अनुमोदन, शुद्ध हृदयकी प्रवृत्ति उसके ऐसा करनेमें कारण बन जाती है। हमें तो यह देखना है कि ऐसी विषम परिस्थितिमें भी द्रौपदी अपने पतियोंके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करनेमें समर्थ होती है या नहीं। यही उसकी धार्मिकताका प्रबल प्रमाण है और इस कसौटीपर वह इतनी खरी उतरती है कि एक पतिसे पातिव्रत-धर्मका निर्वाह करनेवाली विरली ही स्त्री उसके समकक्ष रखी जा सकती है। सच्ची बात तो यह है कि द्रौपदीके अनेक पति हैं ही नहीं, एक ही पति हैं। कार्य-भेदसे एकके ही अनेक रूप हैं, यह बात हम इस अध्यायमें समझानेकी चेष्टा करेंगे।

जब अर्जुन और भीमसेन द्रौपदीको लेकर रंगभूमिसे चले, तब धृष्टद्युम्न उनके पीछे-पीछे पता लगानेके लिये चल पड़े थे। उन्हें किसीने देखा नहीं। कुम्हारके घर पहुँचनेपर वे छिपकर पाण्डवोंकी बातचीत सुनने लगे। उन्होंने उनकी बात सुनकर यह निर्णय किया

कि ये तो कोई क्षत्रिय वीर हैं, परिस्थितिवश इस प्रकार घूम रहे हैं। हो-न-हो ये पाण्डव ही हैं। धृष्टद्युम्न प्रातःकाल अपने पिताके पास गये। राजा द्रुपदने कहा—'बेटा! द्रौपदीको ले जानेवाला पुरुष कौन है? कर देनेवाले वैश्यने या शूद्रने तो मेरी कन्याको जीतकर मेरे सिरपर पैर नहीं रखा? सुगन्धित माला श्मशानमें तो नहीं फेंकी गयी? उसे क्षत्रिय या ब्राह्मण ही होना चाहिये। यदि वह पाण्डुपुत्र अर्जुन है, तब तो मेरी अभिलाषा ही पूरी हो गयी। बहुत सम्भव है कि वह अर्जुन ही हो। सिवा अर्जुनके वह लक्ष्यवेध और कोई नहीं कर सकता।'

धृष्टद्युम्नने कहा—'पिताजी! मैं उनके पीछे-पीछे गया, रास्तेमें वे किसीसे मिले नहीं, किसीसे विशेष बात भी नहीं की। ब्राह्मणलोग उन्हें घेरे हुए थे, द्रौपदी उनकी काली मृगछालाका पिछला छोर पकड़े हुए थी। राजाओंने उनपर आक्रमण किया, परंतु उन दोनों वीरोंके सामने उनकी एक न चली। वे नगरके किनारेपर एक कुम्हारके घर पहुँच गये, वहाँ एक वृद्धा स्त्री बैठी हुई थी; उसके पास ही और भी तीन तेजस्वी वीर बैठे थे। मेरी समझमें वह स्त्री उनकी माता होगी। दोनोंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और द्रौपदीको भी प्रणाम करनेके लिये कहा। द्रौपदीको उस स्त्रीके पास यह कहकर बैठा दिया कि 'यह भिक्षा है।' वहाँ बैठे हुए तीन पुरुषोंमेंसे दो पुरुष भिक्षाके लिये गये। भिक्षा लानेपर वृद्धा स्त्रीके आज्ञानुसार द्रौपदीने सब व्यवस्था की। सब लोग भोजन करके लेट गये, वे बड़े गम्भीर स्वरसे युद्ध और अस्त्र-शस्त्रकी बातें करते थे। ब्राह्मण वैसी बात नहीं किया करते। वैश्यों और शूद्रोंका भी वैसा वार्तालाप सम्भव नहीं, वे वीर क्षत्रिय प्रतीत होते हैं। सम्भव है वे पाण्डव ही हों; उनके बल, वीरता, फुर्ती, सफाई, लक्ष्यवेध और बातचीतको देखकर निश्चय जान पड़ता है कि वे पाण्डव हैं। पाँचों भाई माता कुन्तीके साथ वेश बदले हुए घूम रहे हैं।'

धृष्टद्युम्नकी बात सुनकर द्रुपदको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने उसी समय अपने पुरोहितको पाण्डवोंके पास भेजा। पुरोहितसे कह दिया कि 'आप उनका परिचय लीजिये; उनसे पूछिये कि ये लोग पाण्डुपुत्र हैं या नहीं।' पुरोहित पाण्डवोंके पास गये। उन्होंने युधिष्ठिरसे पूछा—'वीर पुरुष! महाराज द्रुपद आपलोगोंका नाम, कुल और निवास-स्थान जानना चाहते हैं। इस वीर पुरुषको लक्ष्य-वेध करते देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई है। हमारे राजा पाण्डुसे बड़ा प्रेम करते थे; उनकी इच्छा थी कि मेरी लड़कीका विवाह उनके पुत्र अर्जुनसे हो। यदि सचमुच ऐसा ही हुआ है, तो वे अपना बड़ा सौभाग्य समझेंगे। यह उनके लिये यश और पुण्यका कारण होगा।' युधिष्ठिरने भीमसेनसे कहा—'इन ब्राह्मणदेवताका सत्कार करो। विधिपूर्वक अर्घ्य-पाद्यसे इनकी पूजा करो।' पूजा होनेपर ब्राह्मण आसनपर बैठ गये। युधिष्ठिरने कहा—'ब्राह्मणदेवता! इस पुरुषने उनकी शर्तको पूरी करके उनकी कन्या प्राप्त की है, द्रुपदने अपनी इच्छासे कन्यादान नहीं किया है। इस समय हम सब अपना परिचय देना नहीं चाहते; परंतु इतना अवश्य है कि द्रुपदको खेद नहीं करना चाहिये। इस सम्बन्धसे उन्हें प्रसन्नता ही होगी।' ब्राह्मणसे बातें हो ही रही थीं कि द्रुपदके एक दूतने आकर खबर दी कि 'महलमें जेवनार तैयार है।'

दूतने कहा—'महाराज द्रुपदने विवाह और कन्या-दानके अभिप्रायसे महलमें बुलवाया है, वहाँ भोजनकी सब सामग्री तैयार है। आप सब नित्य-कृत्य समाप्त करके द्रौपदीके साथ वहाँ पधारिये। सोनेके कमलोंसे सुशोभित राजाओंके योग्य रथ खड़े हैं, आप इनपर चढ़कर वहाँ चलें।' युधिष्ठिरने पुरोहितको विदा कर दिया; फिर कुन्ती और द्रौपदीको उत्तम रथपर बैठाकर, स्वयं भी सब भाई रथोंपर सवार होकर राजमहलको चले। द्रुपदके महलमें इनके स्वागतके लिये अनेकों प्रकारकी सामग्रियाँ सजायी हुई थीं। चारों वर्णोंके योग्य

फूल-माला, कवच, ढाल, आसन, गाय, रस्सी, बीज, खेतीके सामान, कारीगरियोंके औजार और खेलके सामान रखे गये। एक ओर कवच, तलवार, घोड़े, रथ, धनुष, बाण, शक्ति, प्रास, भुशुण्डि, परशु, उत्तम पलँग, आसन और बहुमूल्य वस्त्र भी रखे गये। यह सब रखनेमें यह दृष्टि भी थी कि उनकी रुचि देखकर उनकी जातिका पता लग सकेगा।

कुन्ती और द्रौपदी द्रुपदके रनिवासमें गयीं। वहाँ उन लोगोंका स्वागत हुआ। पाण्डव सिंहकी भाँति मस्त चालसे द्रुपदके महलमें पहुँचे। राजा, मन्त्री, इष्ट-मित्र और नौकर-चाकरोंने उनका स्वागत किया। पाँचों वीर अशंकित और अविस्मित भावसे ऊँचे आसनोंपर क्रमशः जाकर बैठ गये। दास-दासीगण सोनेके बर्तनोंमें उत्तम-उत्तम भोजन-सामग्री ले आये। पाण्डवोंने अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उसे ग्रहण किया। उपहारकी सामग्रियोंमें उन्होंने केवल युद्धकी ही सामग्री ग्रहण की। उनकी भावभंगी, सभ्यता, मर्यादा, शस्त्रप्रियता और सब वस्तुओंसे परिचय देखकर बुद्धिमानोंने अनुमान कर लिया कि ये पाण्डव ही हैं।

द्रुपदने कहा—'हम कैसे जानें कि आपलोग किस वर्णके हैं? आप चारों वर्णोंमेंसे कोई हैं या मनुष्य-शरीर धारण करके कृष्णाको ग्रहण करनेके लिये कोई देवता ही पधारे हैं? मेरा विश्वास है कि आप मुझसे सत्य ही बोलेंगे और मेरा सन्देह दूर करेंगे।' युधिष्ठिरने कहा—'राजन्! हम सब दूसरे नहीं हैं, आपके ही हैं और आपकी इच्छा पूर्ण हुई है। हम पाँचों भाई महात्मा पाण्डुके पुत्र हैं। मैं सबसे बड़ा युधिष्ठिर हूँ, राजाओंको हराकर कन्याको ले जानेवाले भीम और अर्जुन हैं। दोनों छोटे भाई नकुल और सहदेव हैं। मेरी माता कुन्ती कृष्णाके साथ रनिवासमें हैं, आप चिन्ता दूर कीजिये। आप हमारे पूज्य और सहायक हैं। आपसे मैंने सच्ची बात बतला दी।' युधिष्ठिरकी बात सुनकर द्रुपदकी आँखोंमें आनन्दके आँसू आ गये।

उन्होंने कुछ कहना चाहा; परंतु उनका गला भर गया, वे कुछ बोल न सके। अपनेको सँभालकर उन्होंने युधिष्ठिरका अभिनन्दन किया और वारणावत नगरसे चलनेके बादका सब हाल पूछा। द्रुपदने युधिष्ठिरको विश्वास दिलाया कि मैं आपका राज्य दिला दूँगा। पाण्डवोंके लिये एक सुन्दर महलकी व्यवस्था कर दी गयी, वे उसीमें सुखपूर्वक रहने लगे।

एक दिन द्रुपदने पुत्रोंसे सलाह करके युधिष्ठिरसे कहा—'पाण्डुनन्दन! अब पाणिग्रहणका शुभ मुहूर्त निश्चित हो जाना चाहिये। देवपूजा, उत्सव अभीसे शुरू हो जायँ और ब्राह्मणोंके आज्ञानुसार अर्जुन द्रौपदीका पाणिग्रहण करें।' युधिष्ठिरने कहा—'राजन्! मुझे भी विवाह करना होगा।' द्रुपद बोले तो फिर आप ही कन्याका पाणिग्रहण कीजिये अथवा भाइयोंमेंसे जिसको कहें, उसीके साथ द्रौपदीका विवाह कर दिया जाय। युधिष्ठिरने कहा—'राजन्! द्रौपदी हम सब भाइयोंकी धर्मपत्नी होगी। मेरी माता ऐसी आज्ञा दे चुकी हैं। उनकी बात अबतक कभी झूठी नहीं हुई है, हमने कभी उनकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया है। यह हमारे लिये सर्वोत्तम धर्म है। अर्जुनने अपने बाहुबलसे यह कन्यारत्न प्राप्त किया है। अभी मेरा और भीमसेनका विवाह नहीं हुआ है। इसलिये अर्जुन इस कन्यासे विवाह नहीं कर सकता। सनातनधर्म यही बतलाता है कि बड़े भाईका विवाह होनेके पूर्व छोटा भाई विवाह कर ले तो वह पापका भागी होता है। हम पाँचोंका नियम है कि जो कुछ मिलता है, उसे हम बाँटकर अपने काममें लाते हैं। हम उस नियमको तोड़ना नहीं चाहते। इससे हम पाँचोंके साथ कृष्णाका विवाह होगा।'

यह सुनकर द्रुपदको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा—'युधिष्ठिर! आप क्या कह रहे हैं? आपके धार्मिक और पवित्र हृदयमें यह बात कैसे आयी? मैंने लोक और वेदका बहुत अनुभव किया है, श्रवण किया है और देखा है। भला, कहीं एक स्त्रीके अनेक

पति हो सकते हैं? एक पुरुषका विवाह अनेक स्त्रियोंके साथ हो सकता है, परंतु एक स्त्रीका विवाह अनेक पुरुषोंके साथ हो, यह तो कभी सुना नहीं गया। आपकी बुद्धि ऐसी कैसे हुई?' युधिष्ठिरने कहा—'महाराज! धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म है। मनुष्य जो कुछ करता है, उसमें केवल एक जन्मकी ही दृष्टि नहीं रहती, उसके कर्म और भोगके साथ अनेक जन्म-जन्मान्तरोंका सम्बन्ध होता है। एक काम एकके लिये धर्म होता है और दूसरेके लिये अधर्म। सब लोग उसकी जटिल समस्याको नहीं समझ सकते। मैंने कभी स्वप्नमें भी असत्य वाणी नहीं कही, स्वप्नमें भी मुझसे अधर्माचरण नहीं हुआ। कुछ बातें ऐसी हैं जो सबसे नहीं कही जा सकतीं। मेरी माताके मुँहसे यह बात निकल गयी है और मेरी भी दृढ़ सम्मति है कि द्रौपदी हम पाँचोंकी धर्मपत्नी हो। यही हमारे ऊपर अटल कर्तव्यका भार आ पड़ा है। आप सोच-विचार मत कीजिये, शंका मत कीजिये। यह बात टाली नहीं जा सकती।' द्रुपदने कहा—'आप पहले कुन्ती और मेरे पुत्र धृष्टद्युम्नके साथ सलाह करके कर्तव्य निश्चय कीजिये; जो होगा, सो होगा। सब मिलकर इस विषयपर विचार करने लगे। उसी समय अकस्मात् भगवान् व्यासदेव वहाँ पधार गये।

व्यासदेवकी विधिपूर्वक पूजा हुई। सब लोग अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये। द्रुपदने व्यासदेवसे प्रश्न किया—'भगवन्! एक स्त्री अनेक पुरुषोंकी उपपत्नी होनेके सिवा धर्मपत्नी कैसे हो सकती है? आप इस विषयमें हमें ठीक-ठीक सम्मति दीजिये।' व्यासजीने कहा—'राजन्! पहले मैं यह सुनना चाहता हूँ कि इसके विषयमें तुमलोगोंमेंसे किसकी क्या राय है?' द्रुपद बोले—'मेरे विचारसे यह काम वेद, शास्त्र और लोकाचारके विरुद्ध है। एक स्त्री अनेक पुरुषोंकी धर्मपत्नी न कभी हुई है और न हो सकती है। हमारे किसी भी पूर्वपुरुषने ऐसा नहीं किया है। इसलिये यह अधर्म है। मेरा जी नहीं चाहता कि यह काम हो।' धृष्टद्युम्नने कहा—'छोटे भाईके लिये

सब सावधान होकर यथास्थान बैठ गये और व्यासजी सुनाने लगे कि द्रौपदीका पाँच पतियोंके साथ विवाह होना क्यों धर्मसंगत है। वे बोले—

'पुराने जमानेकी बात है। नैमिषारण्यक्षेत्रमें देवताओंका एक महान् यज्ञ चल रहा था। यमराजने यज्ञमें दीक्षा ले ली थी, इसलिये वे यज्ञिय पशुओंके अतिरिक्त और किसीका वध नहीं करते थे। इससे मर्त्यलोकके प्राणियोंकी मृत्युका समय बीतने लगा और वे अमर-सरीखे हो गये। पृथ्वीपर प्रजाकी संख्या बहुत बढ़ गयी। इससे देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि पृथिवी इतना भार कैसे सह सकेगी। पृथिवी भी तो देवी ही है। देवीके भारसे देवताओंको चिन्ता होनी ही चाहिये। उनके मनमें यह बात भी आयी कि पृथ्वीके प्राणियोंसे हम इसी अर्थमें अच्छे हैं कि वे मर जाते हैं और हम नहीं मरते। यदि वे भी नहीं मरेंगे तो हममें और उनमें अन्तर ही क्या रहेगा। इसका कुछ-न-कुछ उपाय निकालना चाहिये।

इन्द्र, वरुण, कुबेर, चन्द्रमा, साध्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार आदि सब मिलकर श्रीब्रह्माजीके पास गये। उन्होंने लोकपितामह ब्रह्माके चरणोंमें प्रणाम कर निवेदन किया—'दादाजी! इस समय हम सब बड़े भयभीत हैं; इसका कारण यह है कि आजकल मनुष्योंकी संख्या बहुत बढ़ रही है और उसके घटनेका कोई उपाय नहीं हो रहा है। हमारी व्याकुलता बढ़ रही है। इस दुःखसे स्वर्गमें रहनेपर भी हमें सुखके दर्शन नहीं हो रहे हैं, सुख-शान्ति पानेके लिये हम आपकी शरणमें आये हैं।' ब्रह्माने कहा—'देवताओ! तुमलोग स्वर्गमें रहते हो, तुम्हारे पास भोगकी सब सामग्री है। बुढ़ापा और मृत्युका तुम्हें डर नहीं है, तुम्हें कामना है नहीं; फिर मर्त्यलोकमें रहनेवाले बेचारे मनुष्योंसे तुम क्यों भयभीत होते हो? तुम्हें मनुष्योंसे डरनेका कोई कारण नहीं है।' देवताओंने अंजलि बाँधकर प्रार्थना की—'प्रभो! आजकल किसीकी मृत्यु नहीं हो रही है, इससे मर्त्यलोकके मनुष्य

भी अमर हो गये हैं। मर्त्यलोकके मनुष्य हमारी बराबरी करें—यह हमसे नहीं देखा जाता, हमें इस बातका बड़ा दुःख है। अब आप कोई ऐसी व्यवस्था कीजिये कि हममें और उनमें अन्तर मालूम पड़े; इसीलिये हम सब आपके पास आये हैं।'

ब्रह्माजीने कहा—'इस समय सूर्यपुत्र यमराज महायज्ञमें लगे हुए हैं, इसीसे पृथिवीके प्राणियोंकी मृत्यु नहीं हो रही है। जब वे अपना सब काम पूरा कर लेंगे, तब लोगोंकी मृत्यु होगी। तुमलोगोंकी शक्तिसे शक्तिमान् होकर यमराज मर्त्यलोकके प्राणियोंका संहार करेंगे। तब मनुष्य तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकेंगे।' लोकपितामह ब्रह्माकी यह बात सुनकर देवतालोग उसी स्थानपर गये, जहाँ यज्ञ हो रहा था।

एक दिन सब लोग नदीके तटपर बैठे हुए थे। उन्होंने देखा कि धारामें एक बड़ा ही सुन्दर सोनेका कमल बहा जा रहा है। उसे देखकर उन लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ देवराज इन्द्र वहाँ उपस्थित थे। उनके मनमें उस पुष्पका ठीक-ठीक समाचार जाननेकी उत्सुकता हुई! वे चल पड़े, आगे जानेपर उन्होंने देखा कि जहाँसे नदी निकली है, वहाँ एक बड़ी ही तेजस्विनी स्त्री नदीके भीतर खड़ी होकर जल भर रही है। उसकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। आँसूकी जो बूँद नदीमें गिरती, वही सोनेका कमल हो जाता। इन्द्र उसके पास गये। उन्होंने पूछा—'कल्याणी! तुम कौन हो? किसलिये रो रही हो? अपनी सब बात मुझसे कहो।' उस स्त्रीने इन्द्रकी ओर देखकर कहा—'देवराज! तुम तनिक मेरे साथ आगे चले आओ, तुम्हें मालूम हो जायगा कि मैं कौन हूँ और क्यों रो रही हूँ।' इन्द्र उसके पीछे-पीछे चलने लगे।

इन्द्रने आगे जाकर देखा कि हिमाचलके शिखरपर एक परम सुन्दर युवा पुरुष सिद्धासन लगाये बैठा है और उसके पास ही एक सुन्दरी युवती बैठी है। वे दोनों आपसमें चौसर खेल रहे थे। इन्द्रके पहुँचनेपर भी उन लोगोंने कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। इन्द्रको ऐसा मालूम हुआ कि ये तो

मेरा अपमान कर रहे हैं। उनके कलेजेमें कुछ थोड़ी-थोड़ी जलन होने लगी। उन्होंने क्रोधपूर्ण दृष्टिसे उस युवककी ओर देखकर कहा—'युवक! क्या तुम नहीं जानते कि मैं इस लोकका स्वामी हूँ? यह लोक मेरे ही अधीन है। अब भी तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं ईश्वर हूँ।' वह पुरुष अपने खेलमें तन्मय हो रहा था। इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर उसने एक बार धीरेसे सिर उठाया और हँस दिया। एक बार उसकी दृष्टि इन्द्रपर पड़ गयी। दृष्टि पड़ते ही इन्द्र ठूँठके समान हो गये— न वे हिल सकते थे, न डोल सकते थे। वह स्त्री रोने लगी। खेल समाप्त होनेपर उस युवा पुरुषने रोती हुई स्त्रीसे कहा—'इन्द्रको मेरे पास ले आओ, मैं इन्द्रका अनिष्ट नहीं कर रहा हूँ। मैं ऐसा उपाय कर रहा हूँ, जिससे फिर इन्द्रको अपने ईश्वरपनेका कभी गर्व न हो।' स्त्रीने जाकर ज्यों ही इन्द्रके शरीरका स्पर्श किया, त्यों ही इन्द्र पृथिवीपर गिर पड़े। तेजस्वी युवकरूपधारी भगवान् शंकरने कहा—'इन्द्र! अब कभी इस प्रकारका अभिमान मत करना कि मैं ईश्वर हूँ। तुम्हारे शरीरमें जो शक्ति है, वह तुम्हारी नहीं दूसरेकी है। अच्छा, माना कि तुम्हारे अंदर बड़ी शक्ति है; इसलिये तुम इस बड़ी-सी पर्वतशिलाको हटाकर नीचेकी गुफामें जाओ, वहाँ तुम्हारे समान और भी बहुत-से तेजस्वी इन्द्र हैं।' इन्द्रने वैसा ही किया। उस शिलाके हटानेपर इन्द्रने देखा कि उन्हींके समान और भी चार इन्द्र वहाँ हैं। उन्हें देखकर इन्द्र बहुत ही दुःखी हुए। वे सोचने लगे— क्या मेरी दशा भी इन्हींके समान होगी!

भगवान् शंकरने अपने दयाभरे चेहरेको तनिक कठोर बनाया और भयंकर भाव प्रकट करते हुए कहा—'इन्द्र! मूर्खताके कारण तुमने मेरा अनादर किया है। जाओ, तुम भी इसी गुफामें रहो।' शंकरकी बात सुनकर इन्द्र मारे डरके थर-थर काँपने लगे। उन्होंने अंजलि बाँधकर सिर नवाकर भगवान् शंकरसे निवेदन किया—'प्रभो! आपने मुझपर विजय पायी। आप स्वयं तीनों लोकोंके स्वामी हैं।' भगवान् शंकर बड़ी उग्र हँसी हँसने लगे। उन्होंने कहा—'ऐसे अभिमानियोंको

बड़े भाईकी स्त्री माताके समान है और बड़े भाईके लिये छोटे भाईकी स्त्री पुत्री तथा पुत्रवधूके समान है। धर्मकी गति सूक्ष्म है, इसलिये हम उसको जान नहीं सकते; परंतु अधर्मको धर्म भी नहीं मान सकते। इसलिये मैं कदापि इस बातका अनुमोदन नहीं कर सकता कि मेरी बहिन पाँच पुरुषोंकी पत्नी हो।' युधिष्ठिरने कहा—'भगवन्! मैंने कभी असत्य नहीं कहा। अधर्ममें मेरी प्रवृत्ति कभी हो ही नहीं सकती; किंतु इस काममें मेरी प्रवृत्ति हो रही है। इसलिये यह अधर्म नहीं है। माताकी आज्ञा है, माता सबसे बढ़कर है। औरोंके लिये यह धर्म न भी हो तो भी हमारे लिये तो यह धर्म हो ही गया है।' कुन्तीने कहा—'युधिष्ठिरका कहना ठीक है। मेरे मुँहसे बात निकल चुकी है, मैं मिथ्या वचनसे बहुत ही डरती हूँ; मेरे वचनको असत्य न होने देनेका इसके अतिरिक्त और क्या उपाय है?' व्यासजीने कहा—'कल्याणी! तुम्हें असत्य बोलनेके पापसे लिप्त नहीं होना पड़ेगा। जो बात तुम्हारे मुँहसे निकल गयी है, वह धर्मके विपरीत नहीं है। जिसका हृदय शुद्ध है, वह भूलसे भी कोई बात कह दे तो सत्य हो जाती है। जो सर्वदा सत्य बोलते हैं उनके मुँहसे अनजानमें असत्य निकल जाय तो भी वह सत्य हो जाता है। युधिष्ठिर धर्मराज हैं, उनकी प्रवृत्ति अधर्ममें नहीं हो सकती। वे धर्मका रहस्य जानते हैं, परंतु कई कारणोंसे वे अपने मुँहसे उसका वर्णन नहीं कर सकते। यह निःसन्देह धर्म है।'

व्यासजीने द्रुपदसे कहा—'मैं सबके सामने तुमसे वह बात नहीं कह सकता। एकान्तमें चलो; मैं तुम्हें समझा दूँगा। चिन्ता न करो। युधिष्ठिर कौन हैं? द्रौपदी कौन हैं? पाँचों पाण्डव कौन हैं, यह बात मैं तुम्हें समझाऊँगा और दिखाऊँगा। युधिष्ठिरका कहना कभी अन्यथा नहीं हो सकता।' इतना कहकर व्यासजी उठ खड़े हुए और द्रुपदका हाथ पकड़कर उन्हें भवनके भीतर एकान्त स्थानमें ले गये। पीछेसे पाण्डव, कुन्ती और धृष्टद्युम्न भी वहाँ पहुँच गये। वहाँ जाकर

कभी क्षमा नहीं करना चाहिये। ये चारों पुरुष भी, जिन्हें तुम गुफामें देख रहे हो, ऐसा ही काम कर चुके हैं। उसीके फलस्वरूप उन्हें यह दशा प्राप्त हुई है! अब तुम भी इन्हींकी भाँति इसी गुफामें पड़े रहो। इसके बाद तुम सबको और इस स्त्रीको मनुष्य-योनिमें जन्म लेना पड़ेगा। यह स्त्री तुम्हारी धर्मपत्नी होगी। वहाँ तुमलोग अद्‌भुत कार्य और असंख्य प्राणियोंका नाश करके फिर अपने कर्मके फलस्वरूप पूर्वोपार्जित इन्द्रलोकमें आ जाओगे। इसके अतिरिक्त मनुष्यलोकमें तुम्हें और भी काम करने पड़ेंगे। मेरी बात सर्वथा सत्य होगी।'

पहलेके इन्द्रोंने कहा—'प्रभो! हम आपकी आज्ञाका पालन करेंगे। मर्त्यलोकमें जन्म लेकर तो मोक्ष भी प्राप्त किया जा सकता है, परंतु वह बहुत कठिन है। हमारी प्रार्थना यह है कि हम किसी मनुष्यके द्वारा उत्पन्न न हों, बल्कि धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारोंसे ही हमारी उत्पत्ति हो। दिव्य अस्त्रोंके द्वारा हम मनुष्योंसे युद्ध करें और अन्तमें अपने लोकमें लौट आयें। नये आये हुए इन्द्रने कहा— 'मैं देवकार्यके लिये पाँचवाँ पुरुष उत्पन्न कर दूँगा।' भगवान् शंकरने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और उस स्त्रीको आज्ञा दी जो कि उस समय भी रो रही थी। उन्होंने कहा—'कल्याणी! तुम स्वर्गकी लक्ष्मी हो, तुम आदिशक्ति भगवती लक्ष्मीकी ही अंशस्वरूपा हो। तुम भी इन लोगोंके साथ मर्त्यलोकमें जाओ और इन पाँचोंकी धर्मपत्नी बनो। उस स्त्रीने भगवान् शंकरकी आज्ञा शिरोधार्य की। उन पाँचों इन्द्रोंके नाम ये हैं—'विश्वभुक्, भूतधामा, शिबि, शान्ति और तेजस्वी। वह स्त्री स्वर्गकी लक्ष्मी थी।

उनके स्वीकार कर लेनेके पश्चात् भगवान् शंकर उन पाँचों इन्द्रों और उस स्त्रीको लेकर पुराणपुरुष अजन्मा भगवान् नारायणके पास गये। नारायणने भगवान् शंकरके कार्यका अनुमोदन किया। उन्होंने कहा—'शंकर! तुम तो मेरी आत्मा ही हो; तुम्हारे द्वारा जो कार्य

होगा, वह सर्वथा मेरी इच्छाके अनुरूप ही होगा। आजकल पृथिवीका भार बहुत बढ़ गया है, लोगोंकी संख्या बहुत हो गयी है, धर्म-कर्ममें रुचि कम होती जा रही है। लोग अपनेको अमर मान रहे हैं, मनुष्योंके रूपमें बहुत-से दैत्य प्रकट हो गये हैं। इन देवताओंके मनमें भी यही इच्छा थी कि अब उनका संहार हो, सो तुमने इनकी वासना पूर्ण की। अब यही लोग चलकर संहारकार्य सम्पन्न करें। मैं भी यदुवंशियोंमें अवतीर्ण होनेवाला हूँ; मैं उनके कार्यमें सहायता करूँगा। धर्मराज्यकी स्थापना और अधर्मराज्यका विनाश तो मुझे करना ही है। यह बड़ा अच्छा हुआ, मैं तुम्हारे इस कार्यका समर्थन करता हूँ।' भगवान् शंकर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन इन्द्रोंको भी बड़ा आनन्द हुआ। वह स्त्री तो फूली नहीं समाती थी। हमारे कार्यसे भगवान्‌की सहानुभूति है और वे हमारे साथ रहेंगे—यह सोचकर वे सब गद्‌गद हो रहे थे।

वे नारायण ही श्रीकृष्णरूपमें अवतीर्ण हुए। पहलेके चारों इन्द्र, युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव हुए, पाँचवें पुरन्दरके अंशसे सव्यसाची अर्जुन हुए। वह स्वर्गकी लक्ष्मी ही द्रौपदी हुई हैं।

[इस प्रसंगसे यह बात अवगत हो जाती है कि द्रौपदी पहले क्या थी और वह मनुष्य कैसे हुई? इस कथामें हमारे सीखनेके लिये बहुत-सी बातें हैं। इसपर ही थोड़ा विचार कर लें। भगवान्‌की बनायी हुई सृष्टिमें एक भी बात निरर्थक नहीं है, यहाँतक कि मृत्युकी भी बड़ी आवश्यकता है। मृत्यु न होनेसे पृथिवीका भार बढ़ जाता है, लोग अपनेको अजर-अमर मानकर धर्म-कर्मसे विमुख हो जाते हैं। मनुष्य-जीवनका जो सबसे बड़ा लाभ है—भगवान्‌का भजन, उससे भी वंचित हो जाते हैं। मनुष्यकी प्रवृत्ति स्वभावसे ही विषयोंकी ओर है, वह इन विषयोंको छोड़कर दूसरी ओर केवल दो ही कारणोंसे चलता है—या तो उसे इन पाये जानेवाले विषयोंसे उत्तम लाभ मिलनेका लोभ हो अथवा रोग-शोक, मृत्यु आदिका भय हो।

इसलिये भगवान्‌की सृष्टिमें मृत्यु भी उतनी ही आवश्यक, उतनी ही उपयोगी और उतनी ही सुन्दर है, जितनी कि सुन्दर कही जानेवाली और वस्तुएँ।]

भगवान् कल्पवृक्षस्वरूप हैं और हम सब उन्हींकी छत्रछायामें उन्हींके करकमलोंके नीचे अथवा उन्हींकी गोदमें हैं। हमलोग अपने जीवनमें जैसी-जैसी अभिलाषा करते हैं, वह हमारे जीवनके साथ जोड़ दी जाती है और हमारे जीवनमें जब उसका उपयोग ठीक प्रतीत होता है, तब भगवान् उसे पूर्ण कर दिया करते हैं। इसलिये हमें सावधान रहना चाहिये कि जैसी इच्छा करनेका निषेध है, हमारे जीवनमें कहीं वैसी इच्छा न आ जाय। लोग स्वर्गको बहुत महत्त्व देते हैं, परंतु भगवद्‌भजनके सामने अथवा समत्वकी तुलनामें उसका कोई महत्त्व नहीं है। जब स्वर्गके देवता और इन्द्रके मनमें भी मनुष्योंकी अमरतासे ईर्ष्या और जलन होने लगती है, तब एक बार बलात् हमारे मनमें स्वर्गकी तुच्छता आ जाती है। कैसी विडम्बना है कि स्वर्गीय देवताओंके मनमें भी मनुष्योंके संहारकी इच्छा जाग्रत् हो जाती है। इसलिये हमारे मनमें स्वर्गकी इच्छा नहीं होनी चाहिये।

भगवान्‌की दयालुता भी अवर्णनीय ही है। जब वे देखते हैं कि जैसी इच्छा जीवमें नहीं होनी चाहिये वैसी इच्छा जीव कर रहा है, तब वे उसे ऐसे स्थानपर बैठा देते हैं कि उसकी इच्छा भी पूरी हो जाय और लोकहितमें उसका सदुपयोग भी हो जाय। देवताओंके मनमें बढ़ते हुए मनुष्योंके संहारकी वासना थी, भगवान्‌ने उन्हें पाण्डवोंके रूपमें पैदा करके उनकी इच्छा भी पूर्ण कर दी और उनके द्वारा धर्मराज्यकी स्थापना और अधर्मराज्यका संहार कराकर जगत्‌का हित भी सम्पन्न कर दिया। एक बात और भी ध्यान देनेयोग्य है— इन्द्रको यह अभिमान था कि 'मैं ईश्वर हूँ, जगत्‌की व्यवस्था करनेका मुझे अधिकार है।' शिवरूपमें दर्शन देकर भगवान्‌ने उनका घमण्ड तोड़ा और उन्हें दिखला दिया कि तुम्हारे-जैसे कितने ही इन्द्र यहाँ

गुफामें कैद हैं। स्वर्गकी लक्ष्मीके और जगत्के निर्माण तथा संहारके तुम्हीं अधिकारी नहीं हो और भी बहुत-से इन्द्र हैं जो इन्द्र अपनेको ईश्वर बतलाते थे, वे स्वतन्त्रतासे हिल-डोल भी नहीं सकते। वे तो भगवान्की दृष्टिके अधीन हैं। जब इन्द्र घमण्डसे फूले होते हैं अथवा अपनी अशक्तिका अनुभव करके निश्चेष्ट होते हैं, दोनों ही स्थितियोंमें भगवान् शिव अपनी शक्ति भगवती पार्वतीके साथ क्रीडामें लगे रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सांसारिक व्यक्ति जिन परिस्थितियोंमें सुख-दुःख मानता है, वे भगवान् शिवके लिये क्रीडामात्र हैं। उनके हृदयमें इनसे कभी कोई छोभ नहीं होता।

भगवान् शिव 'संहारके देवता हैं। वे इन्द्रादिके द्वारा संहारकी व्यवस्था कर देते हैं, परंतु इस संहारका अनुमोदन स्थितिके देवता भगवान् नारायणके द्वारा भी होना चाहिये।' इसलिये वे सबको लेकर उनके पास जाते हैं। भगवान् नारायण सबकी इच्छाका ध्यान रखकर उनके साथ हो जाते हैं, जिससे शंकर, इन्द्र, स्वर्गकी लक्ष्मी सभी आनन्दित होते हैं। यह भगवान्की कितनी दयालुता है कि वे अपने भक्तकी प्रत्येक इच्छाके साथ रहते हैं और उसे लोकोपयोगी बना देते हैं।

स्वर्गकी लक्ष्मी आदिशक्ति लक्ष्मीकी ही अंशस्वरूपा हैं, इसलिये वे लक्ष्मीकी ही भाँति सती, साध्वी और पतिपरायणा हैं। जो पहलेके इन्द्र गुफामें बंद थे, उनके लिये वे रोया करती थीं। उनके उद्धारका यही उपाय था कि वे पाँचवें इन्द्रको भी वहीं ले जायँ। इसीसे वे इन्द्रको वहाँ ले गयीं। भगवान् शंकरने पाँचों इन्द्रोंके साथ उन्हें भी मर्त्यलोकमें भेज दिया और वे पहलेकी ही भाँति अपने पति इन्द्रके पाँचों रूपोंकी सेवा करती रहीं। द्रौपदीके जीवनमें हम यह बात देखेंगे कि पाँचों पतियोंके साथ उसका समान प्रेम है। वह पाँचोंको शक्ति देती है, शान्ति देती है और समय-समयपर कर्तव्यकर्ममें प्रवृत्त होनेके लिये उत्तेजना देती है। उसका जीवन ऐसा ही है, मानो वह किसी

एक आदर्श पुरुषकी आदर्श पत्नी हो और वास्तवमें वह एककी ही पत्नी है। व्यासजीकी कही हुई कथासे यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जाती है। अब आगे व्यासजीकी बात सुनिये।

द्रौपदीको पूर्वजन्ममें ही पाँचों पाण्डवोंकी स्त्री होनेके लिये भगवान् शंकरकी आज्ञा मिल चुकी है, यह बात मैंने तुमसे कह दी। तुम्हीं विचार करो, यदि देवकार्य न होता तो यह तुम्हारे यज्ञके अन्तमें वेदीसे कैसे उत्पन्न होती? क्या लौकिक स्त्रियाँ ऐसे उत्पन्न होती हैं और इतनी सुन्दरी हो सकती हैं? इसके शरीरकी सुगन्ध, जो नीले कमलके समान है, चारों ओर एक कोसतक फैली रहती है, क्या यह इसकी दिव्यताका प्रमाण नहीं है? फिर भी 'मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ, तुम उस दृष्टिसे पाण्डवोंके पूर्वरूपको देखो।' भगवान् व्यासने इतना कहकर अपने तपोबलके प्रभावसे द्रुपदको दिव्य दृष्टि दी और द्रुपदने देखा कि पाँचों पाण्डव सचमुच इन्द्र हैं। उनके माथेपर सोनेके दिव्य मुकुट और गलेमें दिव्य मालाएँ हैं। अंगोंमें अनेकों दिव्य आभूषण हैं, शरीर सुन्दर और अवस्था नौजवान है। उनकी ऊँचाई पाँच-पाँच हाथ है और वक्षःस्थल विशाल हैं। द्रुपद अपनी आँखोंसे यह सब देखकर चकित हो गये। वे पहलेके चारों इन्द्रों और इन्द्रके समान इन्द्रके अंश अर्जुन और द्रौपदीको दिव्यरूपमें देखकर बहुत विस्मित और संतुष्ट हुए; उन्होंने स्वीकार कर लिया कि द्रौपदी इन पाँचों भाइयोंकी पत्नी होनेयोग्य है। व्यासजीने पुनः अपनी दृष्टि लौटाकर वह कथा भी सुनायी, जो द्रौपदीके पूर्वजन्मके प्रसंगमें आयी है। व्यासजीकी बात मान ली गयी और विवाहके मंगलाचार होने लगे।

(४)

दिनके साथ रात और रातके साथ दिन लगा ही रहता है। यह कभी नहीं हो सकता कि केवल दिन-ही-दिन हो या केवल रात-ही-रात हो। चलते हुए रथका पहिया नीचेसे ऊपर और ऊपरसे नीचे

जाता ही है। ठीक इसी प्रकार मनुष्यका भाग्यचक्र बदलता रहता है—कभी अच्छे दिन आते हैं, कभी बुरे दिन आते हैं। साधारण लोग अच्छे दिनोंमें आसक्त हो जाते हैं, बुरे दिनोंसे घबरा जाते हैं। वे अच्छे दिनोंमें प्रमाद करने लगते हैं और बुरे दिनोंमें पागल हो जाते हैं; परंतु महापुरुष दोनों ही परिस्थितियोंमें एक-से रहते हैं, बुरे दिनोंको शुभ दिनोंके आगमनकी सूचना समझते हैं और शुभ दिनोंको बुरे दिनोंका पूर्वरूप। वे दोनोंको ही एक ही वस्तुके दो पहलू समझते हैं और इसीसे समत्वमें स्थित रहते हैं।

यदि पाण्डव कौरवोंके उत्पातसे, लाक्षागृहके दाहसे, भिक्षाटनसे ऊब गये होते, दुःखी होते, तो सम्भव है उन्हें यह दिन देखनेको नहीं मिलता; परंतु वे उन दिनोंमें भी प्रसन्नतासे भगवान्‌का स्मरण करते रहे और इन दिनोंमें भी वैसे ही रहे। अब भिक्षाटनका समय बीत गया। स्वर्गकी लक्ष्मी द्रौपदी उन्हें प्राप्त होने जा रही है—प्राप्त हो चुकी है। केवल स्वर्गकी लक्ष्मी द्रौपदी ही नहीं, उन्हें पृथिवीकी साम्राज्य-लक्ष्मी भी प्राप्त होगी; परंतु बात वही है, दिन सर्वदा एक-से बीतते नहीं। दिन किस प्रकार बदलते रहते हैं और परिस्थितियोंमें किस प्रकार परिवर्तन होता रहता है, इस बातकी झाँकी पाण्डवोंके जीवनपर दृष्टिपात करते ही मिल जाती है।

द्रुपदने भगवान् व्यासकी बात स्वीकार कर ली। वे सोचने लगे कि सारी दुनिया भगवान्‌के चलाये चल रही है। सबके मूलमें अनेकों जन्मोंके कर्म और संस्कार विद्यमान हैं, उन्हें कोई अन्यथा नहीं कर सकता; मनुष्यकी बुद्धि भला क्या कर सकती है। मैंने एक पति प्राप्त होनेके लिये लक्ष्य-वेधकी योजना की थी, वही अनेक पतियोंके प्राप्त होनेका कारण हो गयी। पूर्वजन्ममें द्रौपदीने भी ऐसा ही वर माँगा था, स्वयं भगवान् शंकरने ऐसी व्यवस्था कर दी। अब हमारा क्या दोष है? अब उसमें हमलोगोंका कोई दोष नहीं है। उन्होंने भगवान् व्यासके आज्ञानुसार विवाहकी व्यवस्था कर दी।

यहाँ द्रौपदीके सम्बन्धमें कुछ कहे बिना नहीं रहा जाता। द्रौपदी देवी थी, उसे भगवान्‌पर पूरा विश्वास था। वह पाँचों पाण्डवोंको एक ही रूपमें देखती थी। भगवान् वेदव्यासकी सम्मति, पिताकी आज्ञा, पतियोंकी इच्छापर उसकी अविचल श्रद्धा थी। वह जानती थी कि जो कुछ हो रहा है, मेरे हितके लिये हो रहा है। वह किसी भय, लोभ या दबावमें पड़कर बोलनेसे रुकी हो—ऐसी बात नहीं। जहाँ उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई बात हुई, वह बोल उठती थी। भरी सभामें जब देश-विदेशके नरपतिगण एकत्र थे, उसने बड़ी निर्भीकताके साथ ऊँचे स्वरसे कह दिया, 'मैं कर्णको नहीं वरण कर सकती।' यदि उसके मनमें पाण्डवोंको वरण करनेकी इच्छा न होती, किसी एकको ही वरण करनेकी इच्छा होती तो वह स्पष्ट कह सकती थी, परंतु उसके न बोलनेका यही अर्थ है कि जो कुछ हो रहा था, उसकी इच्छाके अनुसार ही हो रहा था। पूर्वतन कर्मके कारण इन पाँचों पतियोंसे मेरा सम्बन्ध हो रहा है, यह बात उसे मालूम थी। एक बात और है, अपने माता-पिता और अभिभावकोंपर उसका पूरा विश्वास था। वह जानती थी कि मेरी बुद्धि अभी कच्ची है, मुझे संसारका अनुभव ही क्या हुआ है। किसके साथ विवाह करनेसे जीवन सुखी हो सकता है, इस बातको अनुभवी लोग ही जान सकते हैं। द्रौपदी यह बात समझती थी।

इस प्रसंगमें एक बात और कह देनेको जी चाहता है। आजकल विवाहके सम्बन्धमें लड़के-लड़कियोंको जिन्हें संसारके सम्बन्धमें अभी कुछ भी अनुभव नहीं है, स्वच्छन्द कर देनेको कहा जाता है—यह आर्य-संस्कृतिके लिये बड़ी ही भयावह बात है। इससे वासनाओंको पोषण मिलेगा। योग्यताकी परीक्षा नहीं हो सकेगी, विवाह-विच्छेदका बोलबाला होगा और कौटुम्बिक जीवन कलहमय और अस्थिर हो जायगा। आर्य-संस्कृति विवाहको केवल वैषयिक सुखका साधनमात्र नहीं बतलाती, यह तो वैषयिक सुखोंके संकोचके लिये और अर्थ,

धर्म तथा काम (पारलौकिक सुख)-की साधनाके लिये बतलाती है। यदि संसारके व्यवहारसे अनभिज्ञ केवल स्कूल-कॉलेजकी शिक्षा प्राप्त या अप्राप्त नन्हीं-नन्हीं बच्चियोंके सिरपर ही उनके जीवन-सहचरके चुननेका भार छोड़ दिया जाता है तो वे शारीरिक सुन्दरता, मीठी बातें, कृत्रिम हाव-भाव और कुछ रुपये-पैसोंके प्रलोभनमें ही जीवनको ऐसे व्यक्तिके अधीन कर सकती हैं, जिसके साथ न लोककी साधना हो सके और न परलोककी। इसीसे आर्यजातिने पुरातन कालसे यह नियम बना रखा है कि कन्याके पतिका चुनाव उसके माता-पिता, गुरुजन या अभिभावक ही करें। द्रौपदी इस तत्त्वको समझती थी और अपने माँ-बापपर निर्भर थी। द्रौपदीमें कितना धैर्य, कितनी सहिष्णुता, कितनी बुद्धि और कितनी मर्यादा थी— यह बात हम पहले ही दिन, जब वह अर्जुन और भीमके साथ कुन्तीके पास गयी, देख चुके हैं। उसने पहले ही दिन गृहस्थीका भार सँभाल लिया, राजकुमारी होनेपर भी जमीनपर सोयी, सो भी पैरोंकी तरफ। क्या आजकलकी नवशिक्षिता बहिनोंसे ऐसी आशा की जा सकती है?

क्रमशः युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवके साथ द्रौपदीका पाणिग्रहण हुआ। इस स्थानपर देवर्षि नारदने कहा है कि द्रौपदीमें कुछ ऐसी अद्‌भुत बात थी कि वह प्रत्येक पाण्डवके साथ विवाह करनेके समय कन्या-भावको प्राप्त हो जाया करती थी!* विवाह होनेके साथ ही द्रुपदने इतना दहेज दिया कि पाण्डवोंको किसी वस्तुकी कमी नहीं रह गयी। सैकड़ों रथ, घोड़े, हाथी, दास, दासी, हीरे, जवाहरात, रत्न, वस्त्र और आभूषणोंसे पाण्डवोंको अपने समान राजा ही बना दिया। भगवान् श्रीकृष्णने बड़े प्रेम और प्रसन्नतासे

---

* इदं च तत्राद्‌भुतरूपमुत्तमं जगाद देवर्षिरतीवमानुषम्।
महानुभावा किल सा सुमध्यमा बभूव कन्यैव गते गतेऽहनि॥
(महा०, आदि० १९७। १४)

पाण्डवोंके विवाहमें सहयोग दिया। वे उनके प्रत्येक कृत्यमें उपस्थित रहे और सलाह देते रहे! उन्होंने भेंटके तौरपर वैदूर्यमणिसे जटित बहुमूल्य आभूषण, कीमती कपड़े, देश-विदेशके चित्र-विचित्र कम्बल और दुशाले, सैकड़ों दासियाँ, शान्त और नम्र अनेकों हाथी, गहनोंसे सजे हुए उत्तम घोड़े, सुवर्णमण्डित सैकड़ों रथ, करोड़ों मोहरें और छकड़ों सोना उपहारमें दिया। धर्मराज युधिष्ठिरने आवश्यकता और इच्छा न होनेपर भी श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये सब स्वीकार कर लिया।

पाण्डवोंसे सम्बन्ध हो जानेके कारण द्रुपदका बल और भी बढ़ गया; वे निर्भय हो गये। द्रौपदी अपनी सास कुन्तीके पास ही रहती, रानियाँ कुन्तीके पास आतीं और अपना नाम बतलाकर प्रणाम करतीं। द्रौपदी अनेक दासियोंके रहनेपर भी अपनी सासकी सेवा अपने हाथों करती। द्रौपदीकी सुशीलता, सदाचार, मर्यादा और सभ्यतापर कुन्ती मुग्ध थीं। वे आर्द्र-हृदयसे द्रौपदीको आशीर्वाद देतीं। वे कहतीं—'बेटी! तुम सब गुणोंसे भरी-पूरी हो, तुम्हें कोई क्या शिक्षा देगा? फिर भी वात्सल्यस्नेह कुछ-न-कुछ कहला ही देता है। इन्द्राणी इन्द्रसे, स्वाहा अग्निसे, रोहिणी चन्द्रसे, दमयन्ती नलसे, भद्रा कुबेरसे, अरुन्धती वसिष्ठसे और लक्ष्मी नारायणसे जैसा व्यवहार करती हैं, वैसा ही तुम भी अपने पतियोंसे करो। कल्याणी! मैं हृदयसे आशीर्वाद देती हूँ कि तुम चिरजीविनी, वीर-प्रसविनी, बहुत बन्धु-बान्धवोंवाली, सौभाग्यवती और पतिव्रता होकर सब प्रकारके सुख भोगो। अतिथि-अभ्यागत, साधु, बूढ़े और बालकोंकी आवभगत और पालन-पोषण करनेमें ही तुम्हारा समय बीते। तुम्हारे स्वामी राजा हों और रानीके पदपर तुम्हारा अभिषेक हो। तुम्हारे पति अपने बाहुबलसे सारी पृथिवीको जीत लें और तुम वह पृथिवी अश्वमेध महायज्ञकी दक्षिणामें दान करो। पृथिवीके सब श्रेष्ठ पदार्थ सौ वर्षतक तुम्हें प्राप्त होते रहें और तुम उनका उपयोग करती रहो। आज मैं जिस प्रकार

तुम्हारा अभिनन्दन करती हूँ, वैसे ही पुत्र प्राप्त होनेपर भी करूँ। द्रौपदी बड़े प्रेमसे उनके चरणोंका स्पर्श करती और आशीर्वाद ग्रहण करती। द्रौपदीके दिन बड़े सुखसे बीतने लगे, वह सब प्रकारसे सुखी थी! हाँ, उसके मनमें यह बात कभी-कभी आ जाया करती थी कि यदि मैं अपने पतियोंके राज्यमें होती तो कितना अच्छा होता।

द्रौपदी स्वाभिमानिनी थी। उसके पिताके राज्यमें कोई कष्ट नहीं था, बड़ा सम्मान था, बड़ा आदर था। पाण्डवोंकी मन्त्रणासे ही सब काम होते थे। एक प्रकारसे पाण्डवोंका ही शासन था। तथापि द्रौपदीके मनमें यही अभिलाषा थी कि मेरे पति ही सम्राट् हों ऐसा होना स्वाभाविक ही था, वह उन्हीं दिनोंकी प्रतीक्षा करती थी। पाण्डवोंके मनमें भी इसके लिये चिन्ता थी, परंतु वे बाहरसे प्रकट नहीं करते थे। वे द्रुपदके किये हुए उत्सवोंमें भाग लेते और बड़े आनन्दसे अपना जीवन बिताते। वहाँ उत्सव-ही-उत्सव चल रहा था।

इधर तो द्रुपदकी राजधानीमें इस प्रकार खुशी मनायी जा रही थी, उधर कौरवोंके दलमें खलबली मची हुई थी। जिस दिन जासूसोंने हस्तिनापुरमें यह खबर पहुँचायी कि पाण्डव जीते-जागते बच गये हैं, लक्ष्य-वेध करके द्रौपदीको प्राप्त करनेवाले अर्जुन हैं, उनके सहायक भीमसेन थे, जिन्होंने शल्यको पटक दिया था और अब द्रौपदीका उनके साथ विवाह हो गया है, तभीसे वहाँ एक नया ही वायुमण्डल पैदा हो गया और सब भिन्न-भिन्न प्रकारकी बातें करने लगे। कोई कहता कि भीष्म और धृतराष्ट्र दुर्योधन आदिका पक्षपात करते होंगे, नहीं तो पाण्डवोंको इतना कष्ट क्यों होता। कोई कहता—उनका दोष नहीं है, शकुनिके मन्त्रित्व और कर्णकी मित्रताके कारण ही ऐसा हो रहा है। कोई दुर्योधनपर सब जिम्मेवारी लाद देता, कोई पुरोचनको ही दुष्ट बताता; परंतु दुर्योधन आदि तो पुरोचनकी ही निन्दा कर रहे थे—सो भी इसलिये नहीं कि उसने पाण्डवोंको जलानेकी चेष्टा की, बल्कि इसलिये कि उसने सावधानी नहीं की, नहीं तो पाण्डव जीवित

नहीं बच सकते थे। (पहले पुरोचन ही पाण्डवोंको लाक्षागृहमें जलानेके लिये नियुक्त किया गया था।) उन्हें बड़ा भय हुआ कि अब द्रुपदसे सम्बन्ध हो जानेके कारण द्रुपद और द्रुपदके नातेदारोंसे पाण्डवोंको बड़ी सहायता मिलेगी, उनका बल बहुत बढ़ जायगा।

विदुरने यह समाचार धृतराष्ट्रको सुनाया। उन्होंने कहा—'राजन्! बड़े सौभाग्यकी बात है कि कुरुकुल गौरवान्वित हुआ है।' अंधे धृतराष्ट्रने समझा कि द्रौपदी दुर्योधनको मिली है, वे बोल उठे 'बड़ी बात, बड़ी बात।' उन्होंने तरह-तरहके गहने भेजनेकी आज्ञा दी और कहा कि 'बहूके साथ दुर्योधनको मेरे पास लाओ।' विदुरने कहा—'महाराज! पहले पूरी बात तो सुन लीजिये, इससे भी बढ़कर प्रसन्नताकी बात हुई है। पाण्डव सकुशल जीवित हैं, द्रौपदीने उन्हींको वरण किया है, वे अनेक आत्मीयजनोंसे मिलकर द्रुपदकी राजधानीमें ही निवास कर रहे हैं।' धृतराष्ट्रने कहा—'वे तो मेरे पुत्रोंसे भी प्यारे हैं, वे बलवान् सम्बन्धीको पाकर और भी बलिष्ठ हो गये हैं। द्रुपदके आश्रयसे वे शीघ्र ही उन्नति कर सकेंगे।' विदुरने कहा—'मैं भगवान्के श्रीचरणोंमें प्रार्थना करता हूँ कि आपकी बुद्धि सर्वदा ऐसी ही बनी रहे।' वे चले गये।

दुर्योधन और कर्ण आये। उन्होंने कहा—'पिताजी! विदुरके सामने हम अपनी अन्तरंग बात नहीं कहते। आपने उनके सामने पाण्डवोंकी उन्नतिपर हर्ष प्रकट किया है यह ठीक नहीं है। हम तो उनका बल नष्ट करना चाहते हैं।' धृतराष्ट्रने कहा—'बेटा! तुम दोनों जो चाहते हो, वही तो मैं भी चाहता हूँ। विदुरसे मैं अपने मनका भाव छिपाये रखता हूँ। वे मेरी किसी भी चेष्टासे कुछ समझ न लें, इसलिये उनके आगे पाण्डवोंका बखान किया करता हूँ।' दुर्योधनने कहा—'इस समय भेदनीतिसे काम लेना ठीक होगा। द्रुपद, उनके पुत्र और मन्त्रियोंको प्रलोभन देकर अपने पक्षमें कर लिया जाय! अथवा विद्वान् ब्राह्मणोंको भेजकर पाण्डवोंको ऐसी सलाह दिलायी जाय कि वे यहाँ

आयें ही नहीं। पाँचों भाइयोंमें अनबन करा दी जाय। द्रौपदी सबसे बराबर प्रेम नहीं करती, तुमसे कम करती है—यह कहकर पाण्डवोंके मनमें मनमुटावका बीज बो दिया जाय। धोखा देकर भीमसेनको मरवा डाला जाय। कुछ ऐसी स्त्रियाँ भेजी जायँ, जो जाकर पाण्डवोंको मोहित कर लें और द्रौपदी उनसे चिढ़ जाय। यह भी हो सकता है कि कर्णको भेजकर उन्हें यहाँ बुलवा लिया जाय और फिर किसी-न-किसी उपायसे उन्हें मरवा डाला जाय। आप जो ठीक समझें, बतायें। जल्दी कीजिये; जबतक पाण्डव द्रुपदके विश्वासपात्र नहीं हो जाते, तभीतक यह काम हो जाना चाहिये, क्यों कर्ण! तुम क्या समझते हो?

कर्णने दुर्योधनकी सलाहका विरोध किया। उसने कहा—'कुटिल उपायोंसे पाण्डवोंका निग्रह असम्भव है, बचपनसे आजतक तुम उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। अब वे सयाने हो गये हैं, द्रुपदसे उनका सम्बन्ध घनिष्ठ हो गया है। अब द्रुपद और द्रुपदके सम्बन्धी प्रलोभनोंमें नहीं आ सकते। पाण्डव जितेन्द्रिय हैं और अपना पैतृक राज्य पानेकी उनकी प्रबल लालसा है। न द्रौपदी उनसे खीझ सकती और न तो वे द्रौपदीके लिये आपसमें लड़ ही सकते हैं। इसलिये इस समय भेदनीतिसे काम न लेकर प्रत्यक्ष दण्डनीतिसे काम लेना चाहिये। अभी द्रुपदका पक्ष निर्बल है, उन्होंने तैयारी भी नहीं की है, यादवोंकी सेना लेकर श्रीकृष्ण भी उनके सहायतार्थ नहीं आये हैं, अभी उनपर आक्रमण कर दिया जाय। राजन्! हमें द्रुपदकी सहायतासे कोई डर नहीं है, सबसे बड़ा डर है श्रीकृष्णका; वे पाण्डवोंके लिये धन, सम्पत्ति, भोग और राज्यका त्याग कर सकते हैं। उनकी सहायताके पहले ही पाण्डवोंपर चढ़ाई कर दी जाय, यह क्षत्रियधर्मके अनुकूल भी है।'

धृतराष्ट्रने कर्णकी प्रशंसा की और कहा कि तुम्हारा विचार ठीक होनेपर भी भीष्म, द्रोण और विदुरके साथ सलाह कर लेना अच्छा

है; क्योंकि उनकी सहानुभूतिके बिना हमारा कोई काम ठीक उतर सकेगा या नहीं—इसमें सन्देह है। भीष्म, द्रोण और विदुर बुलाये गये। भीष्मने धृतराष्ट्रके पूछनेपर कहा—'मुझे युद्ध करना पसन्द नहीं; मैं दोनोंको ही समदृष्टिसे देखता हूँ, दोनों ही मेरे प्यारे हैं। मेरी सम्मति यही है कि प्रेम, प्रसन्नता और आदरके साथ पाण्डवोंको उनका हिस्सा (आधा राज्य) दे दिया जाय। इसीसे हम सबका, दोनों कुलका और सारे जगत्का कल्याण है! पितामह भीष्मने दुर्योधनको भी बहुत कुछ समझाया। द्रोणाचार्यने भी भीष्मपितामहकी बातोंका समर्थन किया और कहा कि पाण्डवोंको लानेके लिये यहाँसे कोई प्रियवादी पुरुष भेजा जाय, उनके पास बहुत-से हीरे-रत्न आदि भेजे जायँ। जो पुरुष यहाँसे जाय, वह द्रुपदसे कहे कि 'महाराज! आपके साथ सम्बन्ध होनेसे कौरवोंको बड़ी खुशी हुई है।' द्रौपदीके लिये अनेकों प्रकारके आभूषण भेजे जायँ। द्रुपदके सामने पाण्डवोंको यहाँ लानेका प्रस्ताव रखकर स्वीकृतिके लिये उनसे प्रार्थना की जाय। पाण्डवोंको बुलाकर उनका पैतृक राज्य दे दिया जाय और किसी प्रकार उनका विरोध न किया जाय। इसीमें सबकी भलाई है।'

इस प्रसंगमें कर्ण और द्रोणाचार्यका वाद-विवाद हो गया। हमें उन बातोंसे कोई प्रयोजन नहीं है। विदुरने कर्ण और द्रोणाचार्यके बीचमें पड़कर उनका विवाद शान्त किया और कहा कि 'राजन्! आप पाण्डवोंपर कृपा मत कीजिये, अपने-आपपर कृपा कीजिये। पाण्डवोंके साथ दुर्व्यवहार करनेके कारण आपके सिरपर कलंकका टीका लग गया है, उसे धो डालिये; उन्हें कोई धोखा देकर या सामने लड़कर मार नहीं सकता। उनमें धैर्य, दया, क्षमा, सत्य, पराक्रम आदि गुण वर्तमान हैं। श्रीकृष्ण और सात्यकि उनके सहायक हैं। द्रुपद, धृष्टद्युम्न उनके सम्बन्धी हैं। उनसे हमारी अनबन भी रह चुकी है, इसलिये इस वैरको आगे न बढ़ाकर द्रौपदीके सम्बन्धसे लाभ उठाया जाय और सबसे मित्रता कर ली जाय। पाण्डवोंसे मेल कर लेनेपर

श्रीकृष्ण और यादवोंकी अपार सेना हमारे पक्षमें हो जाती है। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि विजय उसी पक्षकी होगी, जिसमें श्रीकृष्ण होंगे। एक बात और भी मैं आपको बताये देता हूँ—जबसे प्रजाको मालूम हुआ है कि पुरोचनके द्वारा पाण्डवोंको जलानेकी चेष्टा की गयी थी, तबसे वह क्षुब्ध हो गयी है और उनके जीवित रहनेका समाचार सुनकर उनको देखनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित है। यदि प्रजाकी यह इच्छा पूर्ण नहीं की जायगी तो बड़े अनर्थकी सम्भावना है। दुर्योधन, कर्ण और शकुनि कच्ची बुद्धिके नासमझ बालक हैं। उनकी रुचि अधर्ममें है, आप उनकी बात मत सुनिये। भीष्म और द्रोण आपके सच्चे हितैषी हैं, वे ज्ञानवृद्ध हैं, अनुभवी हैं। उनकी बात माननेमें ही आपका वास्तविक हित है। मैं फिर कहे देता हूँ कि दुर्योधनके मोहसे सब पुत्रोंका, वंशका, क्षत्रियोंका, प्रजाका और जगत्‌का विनाश मत कीजिये।'

धृतराष्ट्रने विदुरकी सम्मतिका सम्मान किया। उन्होंने कहा—'मुझे भीष्मपितामह, आचार्य द्रोण और तुम्हारी सम्मति पसन्द है। मैं भी तो यही कहता हूँ। धर्मानुसार पाण्डव भी मेरे ही पुत्र हैं, मेरे ही पुत्रोंकी भाँति वे भी राज्यके अधिकारी हैं। तुम जाओ और आदरके साथ कुन्ती, द्रौपदी और पाण्डवोंको ले आओ। पाण्डवोंके जीवनसे, द्रौपदीकी प्राप्तिसे मैं बहुत ही आनन्दित हुआ हूँ; यह बड़े सौभाग्यकी बात है। मैं उनसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित हूँ।' विदुरने यात्रा शुरू कर दी। वे अनेकों प्रकारके उपहार लेकर द्रुपदकी राजधानीमें पहुँचे। द्रुपदसे मिलनेके पश्चात् वे श्रीकृष्णके पास गये। पाण्डवोंसे मिलकर उन्होंने सब उपहार यथायोग्य दिये। वहाँका स्वागत-सत्कार समाप्त होनेपर विदुरने बड़ी नम्रतासे महाराज द्रुपदके सामने निवेदन किया। उन्होंने—महाराज धृतराष्ट्रने आपलोगोंका कुशल-मंगल पूछा है। वे यह सम्बन्ध हो जानेसे बहुत प्रसन्न हैं। कौरवोंके पूजनीय वृद्ध भीष्मपितामहने और आपके मित्र महात्मा द्रोणाचार्यने आपका

अभिनन्दन किया है एवं सप्रेम आलिंगन कहा है। वहाँके लोगोंने इस सम्बन्धसे राज्य-लाभकी अपेक्षा भी अधिक आनन्दित होकर आपकी सेवामें मुझे भेजा है। वे पाण्डवोंको देखनेके लिये अत्यधिक उत्कण्ठित हैं। कुरुकुलकी स्त्रियाँ माता कुन्ती और नववधू द्रौपदीको देखनेके लिये बहुत ही उत्सुक हैं। आप इनको वहाँ जानेकी अनुमति दीजिये। आपकी स्वीकृति मिलते ही मैं वहाँ सन्देश भेज दूँगा कि हम कुन्ती, द्रौपदी और पाण्डवोंके साथ रवाना हो रहे हैं।

राजा द्रुपदने कहा—'विदुरजी! इस सम्बन्धसे मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई है। पाण्डवोंके लिये यह घर भी अपना ही है और वह तो है ही। मैं कैसे कह सकता हूँ कि ये यहाँसे जायँ। परंतु यदि श्रीकृष्ण, पाण्डव, कुन्ती वहाँ जाना आवश्यक समझते हों तो ये लोग जा सकते हैं। श्रीकृष्ण और बलराम इनके सच्चे हितचिन्तक हैं। उनकी सम्मतिके अनुसार ही इन्हें काम करना चाहिये।' भगवान् श्रीकृष्णने हस्तिनापुर जानेकी ही सम्मति दी। द्रुपदने बड़े सम्मानके साथ अनेकों प्रकारके उपहार देकर पाण्डवोंको विदा किया। पाँचों पाण्डव, कुन्ती, द्रौपदी, विदुर, श्रीकृष्ण—अनेकों दास-दासी और सामग्रीके साथ सब लोग हस्तिनापुर आये। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विकर्ण, चित्रसेन और असंख्य नगरवासियोंने आगे जाकर उनका स्वागत किया। कौरवोंके अतिरिक्त सबकी आन्तरिक इच्छा यही थी कि पाण्डव सर्वदा यहीं रहें।

(५)

कुछ दिनोंके बाद भीष्म और धृतराष्ट्रकी सम्मतिसे युधिष्ठिरने खाण्डवप्रस्थमें जाकर एक नया नगर बसाया; उसका नाम इन्द्रप्रस्थ रखा गया। थोड़े ही दिनोंमें वह नगरी सर्वांगपूर्ण हो गयी; ऐसी कोई भी वस्तु नहीं थी जो उस नगरमें न मिलती हो। सभी प्रकारके लोग आकर उसमें बस गये। पाण्डव आधा राज्य लेकर सुखपूर्वक निवास करने लगे। लोग चाहते तो यही हैं कि हमारे जीवनमें किसी प्रकारका

बन्धन न रहे, हम सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त रहें, परंतु ऐसी स्थिति प्राप्त करनेका साधन लोगोंकी समझमें सुगमतासे नहीं आता। सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्तिका कारण एकके साथ बँध जाना है। जीवनको सब बन्धनोंसे छुड़ा लेनेका साधन उसे किसी नियममें बाँध देना है। जीवनको नियमके अधीन कर देना आलस्यपर विजय पाना है। जीवनको नियमके अधीन कर देना प्रमादको सदाके लिये विदा कर देना है। नियमित हो जाना प्रपंचके अनेकों झंझटोंसे छूट जाना है। नियम जीवनकी सब बुराइयोंको पीसकर—गलाकर ऐसे साँचेमें ढाल देता है कि वे आमूल परिवर्तित होकर भलाइयोंके रूपमें बन जायँ। जिसके जीवनमें नियम नहीं, उसका जीवन शृंखलाहीन है। वह कोई भी बड़ा काम नहीं कर सकता, वह घबरा जाता है, चिन्तित रहता है, अपने कर्मकी सफलतामें सन्दिग्ध रहता है। जीवनको, परिवारको, जातिको, समाजको और राष्ट्रको नियन्त्रित, नियमित रखनेसे ही सच्चे सुख और शान्तिके दर्शन होते हैं।

पाण्डवोंने इन्द्रप्रस्थ बसा लिया था। उसकी तैयारी पूरी हो चुकी थी। युधिष्ठिर थे राजा और सब भाई थे उनके ही हाथ, उनके ही सहकारी! मानो पाँचों भाई मिलकर एक पूरे राजा हों। रानी तो एक थी ही—द्रौपदी। बड़े आनन्दसे समय बीत रहा था। एक दिनकी बात है—सभा लगी हुई थी, सब लोग अपने-अपने आसनोंपर बैठे हुए थे। राज्यसम्बन्धी ही चर्चा चल रही थी। इतनेमें देवर्षि नारद वीणा बजाते, हरि-गुण गाते हुए वहाँ पहुँच गये। प्रणाम-आशीर्वाद, स्वागत-सत्कार होनेके बाद युधिष्ठिरने अपने राज्यका सब समाचार नारदजीको सुनाया। समाचार मिलते ही द्रौपदी आयी, उसने नारदजीके पैर छूकर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर सिर ढके हुए उनके सामने खड़ी हो गयी। धर्मात्मा भगवत्प्रिय देवर्षि नारदने द्रौपदीको आशीर्वाद देकर रनिवासमें जानेकी आज्ञा दे दी। द्रौपदीने आज्ञा-पालन किया। देवर्षि नारदने कहा—'पाण्डवो! यशस्विनी द्रौपदी तुम

सबकी एकमात्र धर्मपत्नी है। मेरी सम्मति है कि तुमलोग उसके सम्बन्धमें एक नियम बना लो। मैं जानता हूँ कि तुमलोगोंमें परस्पर बड़ा प्रेम है, तथापि इस प्रेमको सुरक्षित रखनेके लिये नियम बनाना आवश्यक है। स्त्रीके कारण कई बार बड़े-बड़े प्रेमियोंमें भी झगड़ा हो जाता है, इस विषयमें मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ। पुराने जमानेकी बात है, दैत्यराज हिरण्यकशिपुके वंशमें निकुम्भ नामक दैत्यके पुत्र सुन्द और उपसुन्द बड़े ही बलवान् थे। उनका अभिप्राय, उद्‌देश्य, सुख-दुःख और काम एक ही था। एकके बिना दूसरा न कहीं जाता था और न तो कुछ खाता-पीता था। दोनों आपसमें बड़ी मधुर चर्चा किया करते थे। वे एक प्राण, दो देह जान पड़ते थे। एक बार उनके मनमें इच्छा हुई कि त्रिलोकीपर विजय प्राप्त किया जाय। वे दोनों तपस्या करने लगे। भूख-प्यास सहन करके जटा-वल्कल धारण किये हुए केवल हवा पीकर ही रहते थे। अँगूठोंके बल खड़े रहते, सूर्यकी ओर एकटक देखते रहते और अपने शरीरसे मांस काट-काटकर हवन करते। उनकी तपस्याके प्रभावसे विन्ध्याचल तपने लगा, उससे धुआँ निकलने लगा। देवताको भय हुआ, उन्होंने विघ्न डालनेके अनेकों उपाय किये। रत्नोंका प्रलोभन दिया गया, सुन्दर स्त्रियोंको भेजकर उन्हें लुभानेकी चेष्टा की गयी, माता, बहिन, स्त्री और अन्यान्य बन्धु-बान्धवोंका वेश धारण करके उनके सामने आर्तनाद किया गया—मुझे बचाओ, मुझे बचाओ। परंतु उनकी तपस्या अडिग थी, वे तनिक भी विचलित नहीं हुए।

वरदान देनेके लिये स्वयं ब्रह्मा उनके पास आये। उन दोनोंने हाथ जोड़कर एक स्वरसे कहा कि हम दोनों मायावी अस्त्रोंके जानकार, इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले, बलवान् और अमर हो जायँ। ब्रह्माने कहा—'बस, आखिरी बात अमर होना छोड़कर और सब तुम्हें प्राप्त हुआ। अमर होना देवताओंकी विशेषता है। इसके अतिरिक्त तुम्हारी तपस्याका उद्देश्य त्रिलोकीपर विजय प्राप्त करना था, अमर

होना नहीं; इसलिये यह वरदान तुम्हें नहीं मिल सकता।' दोनों दैत्योंने कहा—'अच्छा, तो फिर एक वर यह दीजिये कि हम दोनों त्रिलोकीके किसी प्राणीसे ही नहीं, बल्कि किसी पदार्थसे भी न मरें और यदि कभी मरना ही हो तो हम दोनों एक-दूसरेके हाथसे मरें।' ब्रह्माजीने कहा 'एवमस्तु, ऐसा ही हो।'

वे प्रसन्न होकर घर लौट आये। खुशी मनायी जाने लगी। अब उनके सामने कौन टिकता, बात-की-बातमें दिग्विजय हो गयी। देवता लोग अपने लोक छोड़कर भाग गये। ब्राह्मण और तपस्वियोंकी बारी आयी। सब आश्रम नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये, यज्ञशालाएँ जला दी गयीं। वे गुफाओंमें जा-जाकर, दुर्गम स्थानोंमें ढूँढ़-ढूँढ़कर जानवरोंका रूप धारणकर एकान्तवासी तपस्वियोंका संहार करने लगे। ऐसा मालूम हुआ कि अब प्रलय होनेवाला है। देवर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि, परमर्षि और राजर्षि—सब देवताओंके साथ ब्रह्माके पास गये। सबने प्रार्थना की—'प्रभो! क्या अभी प्रलय हो जायगा?' ब्रह्मा चिन्तामें पड़ गये। उन्होंने विश्वकर्माको याद किया, उनसे कहा कि 'एक ऐसी सुन्दरी स्त्री बनाओ जिसके शरीरमें तिलभर भी ऐसा स्थान न हो जिसमें देखनेवालेकी आँखें गड़ न जायँ।' स्त्री बनी और उसका नाम रखा गया—तिलोत्तमा। ब्रह्माने कहा—'तुम जाओ उन दैत्योंके पास; उनमें फूट पड़ जाय—ऐसी चेष्टा करो।' उसने देवताओं, ऋषियोंकी परिक्रमा करके यात्रा की।

उस समय दोनों भाई मदिरा पिये हुए थे, उनकी आँखें लाल-लाल हो रही थीं। तिलोत्तमाको देखते ही दोनों कामवश हो गये। सुन्दने उसका दाहिना हाथ पकड़ा और उपसुन्दने बायाँ। तिलोत्तमाके एक इशारेपर दोनों लड़ पड़े और अन्तमें दोनों परस्परकी गदाकी चोटसे निर्जीव होकर जमीनपर गिर पड़े। उन दोनों वीरोंका—जो एक-हृदय थे, एक-प्राण थे—एक स्त्रीके कारण इस प्रकार विनाश हो गया। युधिष्ठिर! मैं बड़े प्रेम, अनुराग और ममताके कारण कहता

हूँ कि तुमलोग ऐसा नियम बना लो, जिससे तुमलोगोंके सामने ऐसा अवसर ही न आये।' पाण्डवोंने देवर्षि नारदकी सम्मतिसे नियम बना लिया। वे नियमित रूपसे रहने लगे। नारद चले गये। सती द्रौपदी सभीको प्रसन्न रखती थी। उसके सद्भावसे पाण्डवोंमें पारस्परिक प्रेमकी और भी अभिवृद्धि हुई।

एक दिनकी बात है, कुछ चोर एक ब्राह्मणकी गौएँ चुराकर लिये जा रहे थे। यह बात ब्राह्मणको मालूम हो गयी। वह आर्तस्वरसे विलाप करता हुआ पाण्डवोंके पास पहुँचा। उसने कहा—'पापी चोर मेरी गौएँ चुराये लिये जा रहे हैं, तुमलोग मेरी गौओंको बचाओ; तुम हमारे राजा हो, राजाका यही धर्म है।' जो राजा प्रजाकी आयका छठा भाग करस्वरूप ले लेता है, परंतु उनकी रक्षा नहीं करता, वह पापका भागी होता है, अर्जुनने ब्राह्मणकी बात सुनी, उन्होंने कहा—'डरो मत, मैं अभी छुड़ा देता हूँ।' अर्जुनने कह तो दिया, परंतु उनके अस्त्र-शस्त्र सब उसी घरमें थे, जिसमें युधिष्ठिर द्रौपदीके साथ बैठे हुए थे। नियमानुसार अर्जुन उस घरमें नहीं जा सकते थे। एक ओर नियम और एक ओर दीन ब्राह्मणका आर्तस्वर। अर्जुन बड़े असमंजसमें पड़ गये। वे सोचने लगे, चोर इस ब्राह्मणका गोधन लिये जा रहे हैं, इसके आँसू पोंछना उचित है। इसकी उपेक्षासे राजाको भी अधर्म होगा, लोग मुझे क्षत्रिय-धर्मसे च्युत कहेंगे। यदि मैं राजाकी अवज्ञा करके घरमें जाऊँ तो नियम भंगका पाप लगता है। एक बात है, उस पापका प्रायश्चित्त किया जा सकता है। यही नियम बना है न कि जो दूसरेके समयमें अंदर चला जाय, वह बारह वर्षोंतक राज्यसे बाहर रहेगा? तो क्या हानि है। मैं वनवास ही कर लूँगा। चाहे अधर्म हो, चाहे प्राण जायँ, मैं शस्त्र लेनेके लिये इस घरमें जाऊँगा और दीन ब्राह्मणकी रक्षा करूँगा। अर्जुनने वैसा ही किया। युधिष्ठिरके महलमें जाकर वे अपने शस्त्र ले आये और उस ब्राह्मणकी गौएँ बचा लीं। चारों ओर अर्जुनका अभिनन्दन होने लगा, सब उनका यश गाने लगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल अर्जुनने युधिष्ठिरसे कहा—'भैया! मैंने प्रतिज्ञा भंग की है। अब मुझे बारह वर्षोंके लिये वनमें जानेकी आज्ञा दीजिये।' एकाएक अर्जुनके मुँहसे ऐसी बात सुनकर युधिष्ठिर शोकाकुल हो गये। वे गद्गद स्वरसे पूछने लगे—'क्यों क्या हुआ? तुम वनमें क्यों जाओगे?' फिर व्याकुलताके साथ उन्होंने अर्जुनसे कहा—'भाई! तुमसे कोई अपराध नहीं हुआ है, तुम मेरी बात मान लो। बड़ा भाई यदि एकान्तमें हो तो छोटे भाईके वहाँ जानेमें कोई आपत्ति नहीं है। हाँ, छोटा भाई एकान्तमें हो तो बड़े भाईको नहीं जाना चाहिये। तुम यह विचार दूर कर दो, मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ। तुम्हें मेरी बात माननी चाहिये। यदि घरके भीतर आनेसे तुम ऐसा मानते हो कि मैंने बड़े भाईका अप्रिय किया है तो मैं तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये क्षमा करता हूँ। मेरे अन्तःकरणमें तनिक भी क्रोध नहीं है; तुम कहीं मत जाओ, मेरे पास ही रहो।'

अर्जुनने कहा—'भैया! आपका मुझपर बड़ा प्रेम है, प्रेमके कारण ही आप ऐसी बात कह रहे हैं। चाहे जो हो, नियम नियम ही है। उसका उल्लंघन हो ही गया, चाहे बड़ा भाई करे या छोटा। अब किसी प्रकारका बहाना बनाकर यदि नियमको भंग कर दिया जायगा तो वह नियम बार-बार टूटता रहेगा। नियममें कभी शिथिलता नहीं होनी चाहिये। एक बार नियम टूट जाता है तो उसकी पूरी नींव हिल जाती है। मुझे दृढ़ताके साथ उसका प्रायश्चित्त करने दीजिये।' युधिष्ठिरने अनुमति दे दी। अर्जुनने वन-यात्राकी दीक्षा ली।

अर्जुनकी इस वन-यात्रासे भी पाण्डवोंका बड़ा हित हुआ। अनेक परिवारोंके साथ उनका सम्बन्ध स्थापित हो गया। बारह वर्ष पूरे होनेपर अर्जुन पुनः इन्द्रप्रस्थ लौट आये। खाण्डव-वनका दाह हुआ, इन्द्रने अर्जुनको अनेकों प्रकारके शस्त्र देनेका वचन दिया। श्रीकृष्णने इन्द्रसे यह वरदान प्राप्त किया कि 'अर्जुनके साथ सर्वदा मेरी मित्रता बनी रहे।' सब लोग प्रेम और आनन्दसे रहने लगे। द्रौपदी भगवान्

श्रीकृष्णको परमात्माके रूपमें पहचानती थी। उनके प्रति उसके हृदयमें अविचल श्रद्धा थी, प्रगाढ़ प्रेम था और वह सच्चे हृदयसे उनकी सेवामें संलग्न रहती थी।

इस प्रसंगमें नियमकी आवश्यकता, नियमकी महिमा, नियमपर दृढ़ता और नियमभंग होनेपर प्रायश्चित्तकी कर्तव्यताका कुछ वर्णन हुआ है। यद्यपि पाण्डव एक ही थे, फिर भी हम स्थूल दृष्टिसे यह कह सकते हैं कि नियमके कारण पाण्डवोंके जीवनमें बड़ा सुख रहा, बड़ी शान्ति रही। द्रौपदीके जीवनमें इस बातकी कभी प्रतीति ही नहीं होती कि वह अनेक पुरुषोंकी धर्मपत्नी है। इस नियमने इतना नियमित कर दिया उसके जीवनको कि वह सर्वदा एकके ही साथ रहती है और एकके साथ रहकर भी सबको प्रसन्न रखती है। यहाँ यह बात भी स्मरण रखनी चाहिये कि द्रौपदी पंच-कन्याओंमेंसे एक है। वह प्रात:स्मरणीया है, नित्य-कुमारी है। वह जबतक जिस पतिके साथ रहती है, तबतक उसकी पत्नी है, दूसरे पतिके पास जाते ही पहलेके साथ उसका वैसा सम्बन्ध ही नहीं रह जाता। यह बात स्वयं देवर्षि नारदने और भगवान् व्यासने कही है। यह केवल द्रौपदीकी ही विशेषता थी और इस विशेषताका दर्शन हम उसके जीवनमें सर्वत्र पाते हैं।

(६)

अब एक ऐसे प्रसंगकी चर्चा करनी है, जिसकी कल्पनामात्रसे हृदयमें उथल-पुथल मच जाती है। द्रौपदीके जीवनकी यह सबसे करुण घटना है। इस प्रकारकी असहाय अवस्थामें द्रौपदी और कहीं नहीं देखी गयी। ऐसी करुणा, जिसने द्वारकासे भगवान् श्रीकृष्णको खींच लिया; ऐसी करुणा, जिसे देखनेसे अस्वीकार कर दिया भीष्म, द्रोण और विदुरकी आँखोंने; ऐसी करुणाजनक घटना, जो संसारके इतिहासमें भरी सभामें इस प्रकार कभी कहीं नहीं घटी! ऐसी ही घटना घट गयी और लोगोंने उसे देखा, उसमें सम्मिलित होकर

भाग लिया, मानो सबने अपने हृदयकी निष्ठुरता व्यक्त करके जगत्के सामने रख दी हो। इस घटनाके वर्णन करनेमें केवल एक ही बात ऐसी है, जो प्रोत्साहित करती है। वह यह कि आश्रयहीन द्रौपदी भी आश्रयहीन नहीं है। जगत्का आश्रय छूटते ही उसे सर्वाश्रयका आश्रय मिल जाता है। हम देखते हैं और जान पाते हैं कि भगवान् निराश्रयके आश्रय हैं, अशरणके शरण हैं, दुःखियोंके त्राता हैं, दीनजनोंके अपने हैं। वे सच्चे हृदयसे पुकारनेपर दौड़े आते हैं और अवश्य आते हैं। बस, यदि यही बात नहीं होती, द्रौपदीने सच्चे हृदयसे श्रीकृष्णको न पुकारा होता और श्रीकृष्ण आये न होते, उसकी लज्जाकी रक्षा न हुई होती तो इस प्रसंगकी चर्चा इतनी कठोर हो जाती कि उसका वर्णन करना कठिन हो जाता। इसमें केवल कौरवोंके अत्याचार, पाण्डवोंकी सरलता और द्रौपदीके अपमानका वर्णन होता—जिसे न पढ़ना ही हृदयके लिये शान्तिकर होता; परंतु इसमें तो द्रौपदीकी श्रद्धा, उसका विश्वास और भगवान् श्रीकृष्णका वस्त्ररूपमें प्रकट हो जाना—जीवनके लिये इतना आशाप्रद हो जाता है कि इसके वर्णन करनेमें भी एक प्रकारका रस आने लगता है! यही कारण है कि हम अपने हृदयको दबाकर इस ओर बढ़नेकी चेष्टा करते हैं।

द्रौपदी और पाण्डवोंका इन्द्रप्रस्थका जीवन बड़ा ही सुखमय रहा। मयदानवने उनके लिये स्वर्गसे भी सुन्दर सभा बना दी। पाण्डवोंने दिग्विजय कर ली। श्रीकृष्णकी सहायतासे राजसूय-यज्ञ सम्पन्न हो गया और उनके दिन सुखसे बीतने लगे। द्रौपदीके पाँच लड़के भी हो गये थे। उनके नाम थे—प्रतिविन्ध्य, श्रुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक और श्रुतसेन। ये क्रमशः पाँचों पाण्डवोंके पुत्र थे। पाँच-पाँच वीर पति, पाँच पुत्र, सारी पृथ्वीका साम्राज्य, सब लोग आज्ञाकारी, श्रीकृष्ण-जैसे सहायक—द्रौपदीको और क्या चाहिये! वह सुखी थी और सब तरह, सब प्रकारसे सुखी थी!

पाण्डवोंकी सम्पत्ति, सुख और कीर्ति देखकर दुर्योधनका हृदय जलने लगा। उसने छल करके पाण्डवोंको बुलवाया और जुएके लिये बाध्य किया। उस समयकी ऐसी प्रथा ही थी या यही भावी थी। जुआ हुआ और जुएमें युधिष्ठिर सब कुछ हारकर अन्तमें नकुल, सहदेव, अर्जुन, भीम और अपनेको भी हार गये। युधिष्ठिर अपनेको हार गये, परंतु उनके मनमें यह कल्पना भी नहीं हुई कि स्त्री भी जुएपर लगायी जा सकती है। खास करके द्रौपदीके सम्बन्धमें तो स्वप्नमें भी ऐसी बात उनके मनमें नहीं आ सकती थी, नहीं आयी। शकुनिने कहा—'राजन्! आप सब कुछ तो हार गये, परंतु अभी आपकी एक सम्पत्ति शेष है। अभी आप उसे नहीं हारे हैं। आप अबकी बार पांचाली द्रौपदीको दाँवपर लगा दीजिये। यदि इस बार आपकी जीत हो गयी तो आप दासत्वसे छुटकारा पा जायँगे।' युधिष्ठिर जुएके तावमें थे। उन्होंने कहा—'द्रौपदी त्रिभुवन-सुन्दरी है। वह न बहुत नाटी है न बहुत लंबी, न मोटी है न दुबली। उसके काले-काले घुँघराले बाल बड़े ही सुन्दर हैं। उसके नेत्र शरत्कालीन कमलके समान हैं। उसके शरीरसे नील कमलकी सुगन्ध-धारा प्रवाहित हुआ करती है। वह सीधी-सादी, सुन्दरी, सुशीला, अनुकूल, प्रियभाषिणी और सद्‌गुणवती है। एक आदर्श पति अपनी पत्नीमें जितने गुण देखना चाहता है, वे सब उसमें विद्यमान हैं। वह सबसे पहले जग जाती है और सबके बाद सोती है। वह गौ और भेड़ोंके चरवाहोंतककी खबर रखती है। उसका शरीर बड़ा ही सुन्दर, सुकुमार और दिव्य पुष्पके समान है। ऐसी सर्वांगसुन्दरी स्त्रीशिरोमणि पांचालराजकी प्रिय पुत्री द्रौपदीको जुएके दाँवपर नहीं लगाना चाहिये, यह जानता हुआ भी मैं उसे दाँवपर लगा रहा हूँ।'

युधिष्ठिरके मुँहसे ये शब्द निकलते ही बुद्धिमानोंने बड़े खेदसे कहा—'युधिष्ठिरकी बुद्धि मारी गयी। धिक्कार है इस बुद्धिको।'

किसीने कहा—'कपटियोंने सीधे युधिष्ठिरको ठग लिया।' तहलका मच गया। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यके सिरसे पसीना बहने लगा। विदुरने हाथसे सिर पकड़ लिया और उनका शरीर निश्चेष्ट हो गया। बूढ़े धृतराष्ट्र उस समय अपने-आपको नहीं छिपा सके। वे प्रसन्न होकर पूछने लगे—'क्या जीत गये?' दु:शासन और कर्ण बड़े आनन्दित हुए। लोगोंकी आँखोंसे आँसू टपकने लगे। शकुनिने कपटका पासा फेंकते हुए कहा—'मैं ही जीता।' और वह अपने कपटकी चालसे फिर जीत गया। अन्तमें युधिष्ठिर द्रौपदीको भी हार गये।

दुर्योधनने विदुरको बुलाया और कहा—'तुम अभी जाकर पाण्डवोंकी प्यारी द्रुपद-दुलारी कृष्णाको सभामें ले आओ। वह पुण्य न करनेके कारण ही पाण्डवोंकी स्त्री हुई है। अब आकर मेरे घरमें झाड़ू दे और दासियोंके साथ उन्हींकी तरह रहे।' विदुरने कहा—'दुर्योधन! तू मूढ़ हो गया है। कोई भी मनुष्य ऐसी बात अपने मुँहसे नहीं निकाल सकता। तेरी मौत तेरे सिरपर नाच रही है, मर्यादा मत तोड़। इन शेरोंको मत छेड़, इन विषैले साँपोंको ठोकर मत मार। सौ जन्ममें भी द्रौपदी तेरी दासी नहीं हो सकती। मैं धर्मकी ओरसे परमात्माकी शपथ लेकर भरी सभामें तुझसे कहता हूँ कि युधिष्ठिर द्रौपदीको हारनेके पहले अपनेको हार गये थे; इसलिये उनका कोई अधिकार ही नहीं था कि वे द्रौपदीको दाँवपर लगायें।' विदुरने सभाकी ओर देखकर कहा—'दुर्योधन पाण्डवोंके साथ अन्याय नहीं कर रहा है, वह अपने ही साथ अन्याय कर रहा है, अपनी ही आत्माकी हत्या कर रहा है। उसे पता नहीं है कि यह जुएका खेल खेल नहीं है, यह महासंहारका आवाहन है। किसीको हीन नहीं समझना चाहिये। दुर्योधन अपने नाशपर उतारू हो गया है। दुर्योधन अपने हितकी बात नहीं सुन रहा है। मैं स्पष्ट कहे देता हूँ कि अब कुरुवंशका संहार बहुत ही निकट है। उसके साथ ही पृथिवीतलके क्षत्रिय भी नहीं बचेंगे। यह जानकर

आपलोग दुर्योधनको इस अनुचित कृत्यसे रोकें।' परंतु दुर्योधनको रोकता कौन? वह उन्हें डाँटने लगा।

दुर्योधनने अपने सारथि प्रातिकामीको बुलाकर कहा—'तुम जाकर अभी द्रौपदीको ले आओ, अब पाण्डवोंसे मत डरो। ये बेचारे तो हारे हुए हैं। विदुर इनके डरसे ही मुझे खरी-खोटी सुनाते हैं। विदुर हमारी बढ़ती नहीं चाहते, इसीसे विरोध किया करते हैं।' प्रातिकामी द्रौपदीके पास गया। उसने द्रौपदीसे कहा—'राजकुमारी! धर्मराज युधिष्ठिरने जुएके तावमें आकर आपको दाँवपर लगा दिया और दुर्योधनने आपको जीत लिया। अब आपपर दुर्योधनका स्वत्व हो गया है। उनकी आज्ञासे दासीका काम करनेके लिये मैं आपको बुलाने आया हूँ।' द्रौपदीको सहसा विश्वास नहीं हुआ। मेरे धार्मिक पति मुझे जुएके दाँवपर लगा देंगे यह बात वह कैसे सोचती? उसने पूछा—'क्या उनके पास और कुछ नहीं था? इतनी सम्पत्ति रहते उन्होंने मुझे दाँवपर क्यों लगाया?' प्रातिकामीने कहा—'सचमुच उनके पास जबतक दाँवपर लगानेके लिये और कुछ था, तबतक उन्होंने आपको नहीं लगाया। जब सर्वस्व हारकर, भाइयोंको हारकर वे अपनेको भी हार गये, तब उन्होंने आपको लगाया।' द्रौपदीने कहा—'तुम सभामें जाकर पूछ आओ कि उन्होंने पहले किसको हारा है; अपनेको या मुझको।' प्रातिकामीने आकर सभामें द्रौपदीका प्रश्न किया। युधिष्ठिर तो अचेत हो रहे थे, उन्होंने कुछ भला-बुरा कहा नहीं। दुर्योधनने प्रातिकामीसे कहा—'द्रौपदीको जो कुछ पूछना हो, यहाँ आकर पूछ ले।' प्रातिकामी डरकर पुनः द्रौपदीके पास गया।

इस बार प्रातिकामीको द्रौपदीके पास जानेमें बड़ा कष्ट हुआ। वह दुर्योधनके अधीन होनेके कारण ही द्रौपदीके पास गया। उसने जाकर हाथ जोड़कर करुण स्वरसे कहा—'देवी! सभ्य कहलानेवाले लोग आपको सभामें ही बुला रहे हैं। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि अब

कुरुकुलका सर्वनाश समीप है। आपको सभामें बुलानेसे ही यह निश्चय हो गया कि दुरात्मा दुर्योधनका ऐश्वर्य अब मिट्टीमें मिल जायगा और उसे अपने जीवनसे भी हाथ धोना पड़ेगा।' द्रौपदीने कहा—'सूतपुत्र! भगवान्‌की इच्छा ऐसी ही है, विधाताके विधानको कोई टाल नहीं सकता। सब लोग अपने भाग्यचक्रके अनुसार सुख या दुःख पाते हैं। जगत्‌में धर्म ही सबसे बढ़कर है। धर्मकी रक्षा करनेसे धर्म हमारी रक्षा करता है। मेरी आन्तरिक इच्छा है कि कौरव धर्मसे पराङ्मुख न हों। उनके हितके लिये ही मैं सभासदोंसे यह जानना चाहती हूँ कि इस समय धर्मके अनुसार मेरा क्या कर्तव्य है? वे गुरुजन हैं, जो कहेंगे ठीक ही कहेंगे।' प्रातिकामी पुनः सभामें लौट आया।

प्रातिकामीके कई बार प्रश्न करनेपर भी किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया। सब लोग दुर्योधनका हठ जानते थे। युधिष्ठिरने अपने एक दूतसे संदेश भिजवा दिया कि 'द्रौपदी! तुम रजस्वला होनेके कारण एक कपड़ा पहने हुई हो; तो भी अपने ससुर धृतराष्ट्रके सामने चली जाओ। तुम्हें इस दशामें देखकर सभासदोंकी सहानुभूति दुर्योधनके प्रति नहीं रह जायगी।' इतना कहकर वे जमीनकी ओर देखने लगे, दूत चला गया। पाण्डवोंको उदास देखकर दुर्योधन प्रसन्न हो रहा था। उसने प्रातिकामीसे फिर कहा कि 'द्रौपदीको यहीं ले आओ।' वह डर गया। उसने जी कड़ा करके फिर सभासदोंसे पूछा कि 'आखिर आप क्या कहते हैं? मैं द्रौपदीसे क्या कहूँ?' दुर्योधनने अपने भाई दुःशासनसे कहा—'यह प्रातिकामी मूर्ख और ढीठ है। यह भीमसेनसे डरता है, अब इसके लाये द्रौपदी नहीं आयेगी; तुम जाओ और उसे बलपूर्वक पकड़कर ले आओ।' दुःशासन दुर्योधनकी आज्ञा पाकर निःशंकभावसे पाण्डवोंके महलमें घुस गया और जाकर कहने लगा—'पांचाली! आओ-आओ, हमलोगोंने तुम्हें जीत लिया है। अब लज्जा छोड़कर सभामें चलो और दुर्योधनकी सेवा करो।'

द्रौपदीने देखा दुःशासनकी आँखें लाल-लाल हो रही हैं, वह जान

गयी कि यह मुझे बलात् ले जाना चाहता है। उसे बड़ा दुःख हुआ, उसका चेहरा उदास हो गया। वह अपने हाथोंसे आँसू पोंछती हुई आर्तभावसे रनिवासकी ओर भागी। गान्धारी और कौरवोंकी स्त्रियाँ उधर ही थीं। दुःशासनने दौड़कर द्रौपदीके लम्बे, काले और लहरदार बालोंको पकड़ लिया। मदमत्त दुःशासनको क्या पता कि ये वही बाल हैं जो रणांगणमें एक दिन भीमसेनके द्वारा उसके ही रक्तसे धोये जायँगे! बाल पकड़ लेनेपर सनाथ द्रौपदी भी अनाथ-सी हो गयी। केलेके समान काँपने लगी, दुःशासन द्रौपदीको बलपूर्वक खींचकर सभाके पास ले आया। द्रौपदीने कहा—'दुःशासन! इस समय मैं रजस्वला हूँ, एक ही साड़ी पहने हुए हूँ, गुरुजनोंके आगे सभामें मत ले चलो।' दुःशासनने और जोरसे बाल खींचते हुए कहा—'तुम रजस्वला हो या तुम्हारे शरीरपर एक ही साड़ी है, तुम नंगी ही क्यों न हो, इससे हमारा क्या मतलब है। हमने तुमको जुएमें जीत लिया है, तुम हमारी दासी हो गयी हो। दासियोंको लज्जा कैसी।' द्रौपदीके बाल खुले हुए थे। शरीरपरसे आधी साड़ी भी हट गयी थी। लज्जा और क्रोधके मारे उसका हृदय जल रहा था। इसी दशामें वह सभामें लायी गयी। द्रौपदीने धीरे-धीरे कहा—'इन गुरुजनोंके सामने मैं इस वेशमें कैसे रहूँ? दुःशासन! तुम अनार्य पुरुषोंकी भाँति आचरण मत करो। मुझे नंगी मत करो। पाण्डव कभी धर्मसे च्युत नहीं हो सकते। मेरे चित्तमें उनका दोष कभी नहीं आ सकता। तुम अधर्म कर रहे हो। इस प्रकार मेरा अपमान करना बड़ा ही अनुचित है, तुम्हें कोई मना नहीं करता! धिक्कार है, सौ बार धिक्कार है। यहाँ भीष्मपितामह, आचार्य द्रोण और महात्मा विदुर बैठे हैं। क्या तुम्हें वे रोक नहीं सकते!' द्रौपदी पाण्डवोंकी ओर देखने लगी, मानो वह अपने कुटिल कटाक्षोंसे उनके क्रोधकी आगको धधका रही हो! पाण्डवोंकी दशा और भी बुरी होती जा रही थी। उन्हें धन, सम्पत्ति और साम्राज्यके नाशसे इतना कष्ट नहीं हुआ था। दुःशासन, कर्ण, शकुनि द्रौपदीको

'दासी' कहकर ठहाका मारकर हँसने लगे। सभामें द्रौपदीकी यह दुर्गति देखकर पाण्डवोंके हृदयकी क्या दशा हुई होगी, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता।

द्रौपदीका प्रश्न पहलेसे ही था। भीष्मने उसके उत्तरमें कहा— 'कल्याणी! धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म है, इसीसे तुम्हारे प्रश्नका मैं ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे रहा हूँ। जो स्वयं हार गया है, वह स्वामी न होनेके कारण किसी वस्तुको दाँवपर नहीं लगा सकता और स्त्री सर्वदा अपने पतिके अधीन ही होती है। इन दोनों बातोंके कारण तुम्हारे प्रश्नकी ठीक-ठीक मीमांसा नहीं हो पाती। युधिष्ठिर पृथ्वीके साम्राज्यको सहजभावसे छोड़ सकते हैं, परंतु धर्म नहीं छोड़ सकते—यही मेरा विश्वास है। उन्होंने अपने मुँहसे तुम्हें हार जाना स्वीकार किया है और तुम्हारा प्रश्न है कि उन्हें हारनेका अधिकार है या नहीं। इसीसे मैं तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देनेमें असमर्थ हूँ।' द्रौपदीने कहा—'दुष्ट, कपटी और जुआरी लोगोंने जुएमें अनभिज्ञ धर्मराजको धोखा दिया है। मेरे धार्मिक पति न जुआ खेलते, न खेलना जानते और न तो उन्होंने इसके लिये कोई उद्योग ही किया है। धर्मराजके सरल हृदयमें यह बात आयी ही नहीं कि हमसे कपट किया जा रहा है। वे भोले-भाले और सत्यवादी हैं, दूसरोंको भी वैसा ही समझते हैं। वे दुष्टोंके जालमें फँस गये, ऐसी स्थितिमें उनका हारना हारना नहीं कहा जा सकता। मैं कुरुकुलके बड़े-बूढ़ोंसे प्रार्थना करती हूँ कि वे मेरे प्रश्नपर विचार करें और उत्तर दें।' द्रौपदी अपने दीन-भावको प्राप्त पतियोंकी ओर देखकर रोने लगी! कौरव उसकी हँसी उड़ाने लगे। दुःशासन बार-बार उसे खींचने लगा। भीमसेनके लिये यह सब असह्य था। वे क्रोधमें आकर युधिष्ठिरको कुछ भला-बुरा कहने लगे। अर्जुनने समझाया—'भाई! आप धर्मको मत भूलिये, बड़े भाईका अपमान मत कीजिये, शत्रुओंका मनोरथ होनेमें सहायक मत बनिये; भगवान् जो कुछ

करेंगे, ठीक करेंगे। सम्भव है, नहीं, नहीं, निश्चित है कि यह अपमान ही हमारे अभ्युदयका कारण होगा।' भीम शान्त हो गये।

दुर्योधनका एक छोटा भाई था विकर्ण। उसे ये सब बातें, कौरवोंकी यह करतूत बहुत बुरी लग रही थी। उसने खड़े होकर ऊँचे स्वरसे कहा—'सभासदो! आप द्रौपदीके प्रश्नका उचित उत्तर क्यों नहीं देते? सभामें उपस्थित होकर जो ठीक-ठीक नहीं बोलता, वह पापका भागी होता है। आपलोग पक्षपात, काम, क्रोध, लोभ छोड़कर स्पष्ट उत्तर दीजिये।' विकर्णके बारम्बार कहनेपर भी किसीने उत्तर नहीं दिया। विकर्ण क्रोधके मारे लम्बी साँस लेने लगा। उसने हाथ मलते हुए कहा—'सभासदो! तुम उत्तर दो या मत दो; मैं अपनी बुद्धिके अनुसार जो न्यायसंगत समझता हूँ, वह तुमसे कहता हूँ। शास्त्रोंने द्यूत अर्थात् जुएको राजाओंका दुर्व्यसन माना है। जुएमें आसक्त मनुष्य धर्मसे च्युत हो जाता है, इससे उसका किया हुआ काम प्रामाणिक नहीं माना जाता। युधिष्ठिरने जुआरियोंके बुलानेपर यहाँ आकर दुःसंगके कारण जुएके दुर्व्यसनमें फँसकर द्रौपदीकी बाजी लगायी है। द्रौपदी पाँचों पाण्डवोंकी पत्नी है। युधिष्ठिरने अपनेको हारकर द्रौपदीको दाँवपर लगाया है, इसके अतिरिक्त युधिष्ठिरने स्वेच्छासे नहीं, शकुनिके उभाड़नेसे द्रौपदीकी बाजी लगायी है। इन सब कारणोंसे मैं कहता हूँ कि द्रौपदीके साथ अन्याय किया जा रहा है, धर्मके अनुसार वह जीती नहीं गयी है। विकर्णके धर्मानुमोदित न्यायसंगत वचन सुनकर सभामें बड़ा कोलाहल हुआ। कर्णने जाकर विकर्णको बहुत डाँटा और दुःशासनसे कहा—'पाण्डवोंके और द्रौपदीके कपड़े उतरवा लो।' पाण्डवोंने अपने कपड़े उतारकर रख दिये। पापी दुःशासन भरी सभामें द्रौपदीका कपड़ा अपने हाथोंसे उतारने लगा।

द्रौपदीको अबतक अपने पतियों और गुरुजनोंका भरोसा था; वह समझती थी कि उनके सामने कौरव ऐसा क्रूर कार्य नहीं कर पायेंगे;

परंतु उसने बड़े-बूढ़ोंको मौनी देखा। पतियोंको नतमस्तक देखा, आगे-पीछे किसीको सहायक नहीं देखा। उसकी आशा टूट गयी। जगत्‌के लोगोंसे वह निराश हो गयी। उसने अशरण-शरण अपने प्रिय सखा भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया, छोड़ दिया उसने अपने वस्त्रको, हाथ जोड़ लिये, आँखें बंद कर लीं। वह पुकारने लगी— 'हे गोविन्द! हे द्वारिकावासिन् श्रीकृष्ण! हे गोपीजन-वल्लभ! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि कौरव मेरा अपमान कर रहे हैं? हे केशव! हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे आर्तिनाशन! कौरवोंके भयंकर समुद्रमें मैं डूब रही हूँ। जनार्दन! मेरी रक्षा करो, मुझे बचा लो। हे श्रीकृष्ण! हे श्यामसुन्दर! हे महायोगी! हे विश्वात्मन्! हे विश्वभावन! मैं कौरवोंके बीचमें असहाय होकर मर रही हूँ। गोविन्द! मैं तुम्हारी शरणमें हूँ, तुम मेरी रक्षा करो।' इस प्रकार त्रिभुवनेश्वर हरि श्रीकृष्णका स्मरण करके अपना मुँह ढककर द्रौपदी रोने लगी।*

श्रीकृष्ण अन्तर्यामी हैं, वे एकत्र रहनेपर भी सर्वत्र हैं। द्रौपदीकी प्रार्थना उनके कानोंतक पहुँची, यों कहें कि प्रार्थना करनेके पहले ही वे वहाँ पहुँचकर प्रार्थनाकी प्रतीक्षा कर रहे थे। यही मान लें कि प्रार्थना पहुँची। महाभारतकारने तो यहाँतक कह दिया कि द्रौपदीकी पुकार सुनते ही श्रीकृष्ण शय्या, आसन सब कुछ छोड़कर पैदल ही

---

* आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्या चिन्तितो हरिः।
गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन॥
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन।
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन॥
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्।
इत्यनुस्मृत्य कृष्णं सा हरिं त्रिभुवनेश्वरम्॥
प्रारुदद् दुःखिता राजन् मुखमाच्छाद्य भामिनी।
(महा०, सभा० ६८। ४१—४४)

दौड़ आये।* श्रीकृष्ण आये, वस्त्ररूपमें आये। दु:शासन खींचने लगा। द्रौपदीके वस्त्र बढ़ने लगे। जैसी साड़ी द्रौपदी पहने हुए थी, वैसी ही अनेकों साड़ियाँ और दूसरे रंग एवं प्रकारकी अनेकों साड़ियाँ निकलने लगीं। सारा सभाभवन साड़ियोंसे भर गया, दु:शासनके बलिष्ठ हाथ खींचते-खींचते थक गये, परंतु उन कपड़ोंका अन्त नहीं मिला। चारों ओर भयंकर कोलाहल होने लगा, लोग दु:शासनको गाली देने लगे। द्रौपदीकी धर्मशीलताकी प्रशंसा होने लगी।

धर्मकी महिमाका यह अपूर्व दृश्य था। भगवान्‌की शरणागत-रक्षाका अनुपम दृष्टान्त था। युधिष्ठिरकी सहनशीलताकी अभूतपूर्व पराकाष्ठा थी। भीमसेनसे नहीं सहा गया। वे हाथ मलते हुए उठ खड़े हुए। उनके होंठ क्रोधसे फड़क रहे थे, उन्होंने जोरसे कहा—'सभासदो! क्षत्रियो और सारी पृथ्वीके लोगो! सुन लो मेरी प्रतिज्ञा। ऐसी प्रतिज्ञा न कभी किसीने की है और न कोई करेगा। यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करूँ तो मुझे पूर्वजोंकी गति न मिले। इस भरतकुलके कलंक नीच दुर्बुद्धि और पापी दु:शासनकी छाती बलपूर्वक तोड़कर मैं इसका खून पीऊँगा।' भीमके भयंकर वचन सुनकर लोग दु:शासनकी कदर्थना करने लगे और भीमकी इस प्रतिज्ञाको स्वाभाविक कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे। उधर वस्त्र खींचते-खींचते थककर, पार न पानेके कारण लज्जित होकर सिर नीचा करके दु:शासन बैठ गया। सभामें केवल वस्त्रोंकी राशि ही दीखने लगी। सभासदोंने एक स्वरसे उसे धिक्कारा। सभामें सबके मुँहपर यही बात थी कि ये बड़े-बूढ़े लोग द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर क्यों नहीं देते। वे उन्हें अन्यायी कहने लगे।

विदुरजीने सबका प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने कहा—'सभासदो! आप जानते ही हैं कि धर्मशास्त्रोंमें सभ्योंके लिये क्या नियम लिखे

---

* त्यक्त्वा शय्यासनं पद्भ्यां कृपालुः कृपयाभ्यगात्।

हैं। वहाँ उठनेवाले प्रत्येक प्रश्नके सम्बन्धमें उन्हें अपनी सम्मति देना अनिवार्य है, यदि न बोलें तो उन्हें पाप लगता है और धर्मका अनादर होता है। धर्मके पक्षमें सम्मति देते समय कामना, भय अथवा लोभसे प्रभावित नहीं होना चाहिये। द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर देकर आपलोग अपने धर्मकी रक्षा करें, इसके सम्बन्धमें एक प्राचीन इतिहास है।

'प्राचीन समयमें अंगिरा ऋषिके पुत्र सुधन्वा और प्रह्लादके पुत्र विरोचन दोनोंमें एक सुन्दरी स्त्रीके लिये यह विवाद चल पड़ा कि कौन श्रेष्ठ है। दोनों ही अपने-अपनेको श्रेष्ठ बतला रहे थे। प्राणोंकी बाजी लग गयी—'जो श्रेष्ठ हो, वह जीते; जो हार जाय, वह प्राण-त्याग करे।' इस विवादके निर्णयके लिये वे प्रह्लादके पास गये। दोनोंकी बात सुनकर प्रह्लाद बड़ी चिन्तामें पड़ गये; वे न तो अधर्म चाहते थे और न तो दोनोंमेंसे किसीकी मृत्यु। उन्हें असमंजसमें पड़े देखकर सुधन्वाने कहा—'दैत्यराज! यदि तुम पुत्रस्नेहके कारण झूठ बोलोगे या कुछ उत्तर न दोगे तो इन्द्र वज्रके प्रहारसे तुम्हारे सिरके सौ टुकड़े कर देंगे।' प्रह्लाद महात्मा कश्यपके पास गये। उन्होंने महात्मा कश्यपसे कहा—'आप कृपा करके बताइये—जो कोई प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर नहीं देता या जान-बूझकर झूठ बोलता है, उसे मरनेपर कौन-से लोक प्राप्त होते हैं?' कश्यपने कहा—'जो क्रोध या भयके कारण जान-बूझकर प्रश्नोंका उत्तर नहीं देता अथवा झूठ बोलता है, उसे मृत्युके पश्चात् वरुणकी फाँसीमें लटकना पड़ता है। जो साफ-साफ सत्य न कहकर गोलमटोल बोलकर दोनों पक्षोंका जी रखना चाहता है, उसकी भी वही गति होती है। जिस सभामें अधर्मके द्वारा धर्म दबाया जाता है और सभ्य लोग धर्मका पक्ष न लेकर मौन ग्रहण कर लेते हैं, उस सभाके सभ्योंको भी अधर्म होता है। जहाँ निन्दा करनेयोग्य कर्मकी निन्दा नहीं होती, वहाँपर सबसे श्रेष्ठ पुरुषको अधर्मका आधा पाप लगता है। आधेका आधा पापकर्म करनेवालेको और बाकी सभासदोंको। जहाँ निन्दनीय पापकर्मकी

निन्दा की जाती है, वहाँ औरोंको पाप नहीं लगता, केवल करनेवालेको ही लगता है। प्रश्नका अन्यथा उत्तर देनेपर उसके पुण्य तो नष्ट हो ही जाते हैं, साथ ही सात पीढ़ी आगे और सात पीढ़ी पीछेके लोग भी नरकमें जाते हैं।'

कश्यपके ये उपदेश सुनकर प्रह्लादने अपने पुत्रसे कहा—'बेटा विरोचन! तुम्हारी मातासे सुधन्वाकी माता श्रेष्ठ हैं, तुम्हारे पितासे अर्थात् मुझसे सुधन्वाके पिता श्रेष्ठ हैं और तुमसे सुधन्वा श्रेष्ठ हैं। अब ये सुधन्वा तुम्हारे प्राणोंके स्वामी हैं।' प्रह्लादकी बात सुनकर सुधन्वा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'दैत्यराज! तुमने अपने पुत्रके प्राणोंकी परवा न करके धर्मकी रक्षा की है, इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हूँ और यह नहीं चाहता कि तुम्हारे पुत्रकी मृत्यु हो। यह सौ वर्षोंतक जीवित रहे और सुख भोगे।' धर्मनिष्ठाके कारण प्रह्लादने अपने पुत्रकी रक्षा कर ली।

'सभासदो! इस इतिहासके द्वारा सभ्योंके धर्मका पता चलता है। अब द्रौपदीके प्रश्नोंका उत्तर दो।' विदुरके बार-बार कहनेपर भी किसी सभ्यने कुछ उत्तर नहीं दिया। कर्णने दुःशासनसे कहा कि 'द्रौपदी तो हमारी दासी हो ही चुकी है, इसको महलमें ले चलो।' दुःशासन द्रौपदीको खींचने लगा। द्रौपदीने कहा—'दुःशासन! तनिक ठहर जा; मैंने विह्वलताके कारण अबतक गुरुजनोंको प्रणाम नहीं किया, तुम्हारे कारण मुझसे यह अपराध हो गया है।' दुःशासनने फिर द्रौपदीको खींचा और वह जमीनपर गिर पड़ी। द्रौपदीने विलाप करते हुए कहा—'समयका कैसा फेर है, भाग्यचक्रका कैसा अद्भुत परिवर्तन है! स्वयंवरकी सभाके अतिरिक्त मुझे और किसीने कहीं नहीं देखा था। वायु और सूर्य भी मुझे स्पर्श करने और देखनेका साहस नहीं करते थे। वही मैं आज भरी सभामें नग्न की जा रही हूँ, खींची जा रही हूँ, गिरायी जा रही हूँ! हाय रे दैव! तू अभी क्या कराना चाहता है? क्या मेरा दुर्भाग्य अभी पूरा नहीं हुआ?

पाण्डवोंके देखते-देखते दु:शासन मेरा स्पर्श कर रहा है। गुरुजन यहीं बैठे हुए हैं, उनके मुँहसे बकार नहीं निकलती। मैं जिनकी बहू हूँ, जिनकी बेटीके समान हूँ, उन्हीं लोगोंके देखते-देखते और जिन्हें मुझे अपनी बहिन समझनी चाहिये, उन्हीं लोगोंके हाथोंसे धृष्टद्युम्नकी बहिन, पाण्डवोंकी पत्नी और श्रीकृष्णकी सखी मुझ द्रौपदीकी यह दशा हो—क्या आपलोग यही उचित समझते हैं? मैं आपलोगोंसे पुन: पूछती हूँ कि मैं कौरवोंकी दासी हुई हूँ या नहीं? मैं आपलोगोंकी आज्ञाका पालन करूँगी।'

द्रौपदीके वचन सुनकर भीष्मपितामहने कहा—'कल्याणी! धर्मकी गति सूक्ष्म होनेके कारण समय-समयपर अनेकों शास्त्रज्ञ भी उसके बारेमें कुछ ठीक-ठीक निर्णय नहीं दे पाते। बड़े-बड़े धार्मिक भी धर्मसे च्युत हो जाते हैं और बाहरसे अधर्मके मार्गपर चलते हुए दीखनेवाले भी कभी-कभी ऐसा कार्य कर बैठते हैं कि वह उत्कृष्ट धर्म हो जाता है। वास्तवमें तुम्हारा प्रश्न अत्यन्त सूक्ष्म और परिस्थिति बहुत ही गम्भीर है, इसलिये यह प्रश्न बड़े विचारका है। इतने स्वल्प समयमें मैं कोई सिद्धान्त निश्चित नहीं कर सकता। यह सब होनेपर भी कौरवोंके लोभ और मोहको देखकर मैं स्पष्ट कह सकता हूँ कि अब इस वंशका नाश होनेवाला है। बेटी! तुम्हारे कुलके लोग कभी धर्मका उल्लंघन नहीं करते। ऐसी शोचनीय दशामें, ऐसे संकटमें पड़कर भी तुम धर्मका ही अनुसंधान कर रही हो—यह तुम्हारे ही योग्य अनुपम आदर्श है। इस प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर यदि युधिष्ठिर ही दे दें, तो वह समस्या हल हो जाती है।'

भीष्मपितामहको इस प्रकार कहते देखकर दुर्योधनकी बन आयी। वह मुसकराता हुआ द्रौपदीसे कहने लगा—'तुम अपने पतियोंसे ही इस प्रकारका उत्तर क्यों नहीं पूछती? यदि चारों पाण्डव युधिष्ठिरको मिथ्यावादी अथवा अपनेको दाँवपर लगानेके अधिकारसे

रहित कह दें तो तुम मुक्त हो सकती हो। स्वयं युधिष्ठिर ही कह दें कि द्रौपदीको दासी बनानेका मेरा अधिकार नहीं है! बस, इतनेसे ही तुम्हारा काम बन जाता है।' दुर्योधनको मुसकराते हुए देखकर भीमसेन उबल पड़े। उन्होंने कहा—'यदि धर्मराज हमसे श्रेष्ठ और हमारे स्वामी न होते तो हम अबतक कौरवोंका अत्याचार देखते नहीं रहते। धर्मराजने जो कुछ किया है, ठीक किया है। यदि उन्होंने हमें दाँवपर लगा दिया, वे हमें हार गये तो हम भी अपनेको हारे हुए ही मानते हैं। यदि मैं हार न गया होता तो द्रौपदीके बालोंमें हाथ लगानेवाला अबतक जीवित न होता। ये मेरी दृढ़ भुजाएँ इन्द्रको भी पछाड़ सकती हैं। धर्मराज मुझे अनुमति दें, अर्जुन मेरा अनुमोदन करें तो मैं इन दुष्टोंको पकड़कर अभी पीस डालूँ।' भीष्म, द्रोण आदिने कहा—'भीमसेन! क्षमा करो, शान्त हो जाओ। तुम सब कुछ कर सकते हो।'

दुर्योधन बार-बार पाण्डवोंको चिढ़ाने लगा। वह जानता था कि इस समय ये कुछ कर नहीं सकते। उसकी दुश्चेष्टा देखकर भीमसेन बड़े जोरसे बोल उठे। उन्होंने कहा—'सभासदो और दुर्योधन! सुन लो मेरी प्रतिज्ञा; अब वे दिन दूर नहीं हैं, जब मैं अपनी गदासे इस क्रूर दुर्योधनकी जाँघ तोड़ डालूँगा। यदि मैं इसकी जाँघ न तोड़ सकूँ तो मुझे अपने पितरोंके लोक न मिले।' यह कहते समय भीमसेनके शरीरसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। विदुरने भीमसेनकी प्रतिज्ञा सुनकर कहा—'कुरुवंशियो! इसमें संदेह नहीं कि दैवकी प्रेरणासे ही भीमने भीषण प्रतिज्ञा की है, परंतु इसमें सबसे बड़ा दोष दुर्योधनका है। द्यूतके नियम यह कदापि नहीं कहते कि स्त्रीको भरी सभामें लाया जाय। एक तो जुआ स्वयं ही दुर्व्यसन और दूसरे उसके नियमोंका भी भंग! इस अधर्मके कारण तुम्हारे सब पुण्य नष्ट हो गये। यदि धर्मराज अपनेको हारनेके पहले द्रौपदीको हार जाते तो ठीक हो सकता था; परंतु अपनेको हारनेके

बाद द्रौपदीपर उनका कोई स्वत्व नहीं रहा कि दाँवपर लगायें। इसलिये शकुनिके बहकानेसे धर्म मत छोड़ो, पागल मत बनो।' दुर्योधनने फिर वही बात कही कि इसका फैसला पाण्डव ही करें। अर्जुनने कहा—'जब युधिष्ठिरने हमें दाँवपर लगाया, तब वे अपनेको हारे नहीं थे, इसलिये हम सबके स्वामी थे और हमें हार सकते थे; परंतु जब वे अपनेको हार गये, तब वे किसके स्वामी रह सकते हैं—सब लोग इस बातपर विचार करें।' सभामें ऐसी ही बातें होने लगीं।

उसी समय धृतराष्ट्रके अग्निहोत्रभवनमें एक गीदड़ घुस गया और वह ऊँचे स्वरसे बोलने लगा। साथ ही गधे और अनेक अशुभ पक्षियोंके शब्द होने लगे। सभी लोग अनिष्टकी आशंकासे भयभीत हो गये। गुरुजनोंके मुँहसे 'स्वस्ति'-'स्वस्ति' निकलने लगा। धृतराष्ट्रने विदुर और गान्धारीसे सब बातें सुनकर दुर्योधनको डाँटा—'मूर्ख दुर्योधन! तूने अपने हाथों अपना नाश कर लिया। अरे,भला भरी सभामें कुरुकुलकी स्त्री और उसमें भी पाण्डवोंकी धर्मपत्नी द्रौपदी लायी जाय और तू उससे ऐसी बातें करे; ऐसा दुर्व्यवहार करे? धिक्कार है तुझे, तुझे चुल्लूभर पानीमें डूब मरना चाहिये।' इस प्रकार दुर्योधनसे कहकर प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्रने द्रौपदीको अपने पास बुलाया और कहा—'द्रौपदी! तुम्हारी धर्ममें अविचल श्रद्धा है, इसलिये कुरुकुलकी समस्त स्त्रियोंमें तुम श्रेष्ठ हो, तुम्हारे पातिव्रत और सदाचारसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ; तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो।' द्रौपदीने कहा—'महाराज! मुझपर आपकी बड़ी कृपा है। यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो पहले धर्मराज युधिष्ठिर दास-भावसे मुक्त कर दिये जायँ। मेरे बड़े लड़के प्रतिविन्ध्यको कोई दासपुत्र न कहे। वह बड़ा ही होनहार है।' धृतराष्ट्रने कहा—'तथास्तु'। इसके बाद उन्होंने द्रौपदीसे कहा—'केवल एक ही वर नहीं, तुम और माँगो। मैं बड़ी प्रसन्नतासे दूँगा।'

द्रौपदीने कहा—'यदि आप प्रसन्नतासे मुझे दूसरा वर देना चाहते हैं, तो मैं यह माँगती हूँ कि अपने धनुष, बाण, रथ आदिके साथ शेष चारों पाण्डव भी दासभावसे छुटकारा पा जायँ।' धृतराष्ट्रने कहा— 'बेटी! इन दो वरदानोंसे ही तुम्हारा यथोचित सत्कार नहीं होता, इसलिये तुम एक वर और माँगो।' द्रौपदीने कहा—'भगवन्! लोभसे धर्मका नाश हो जाता है। अब मैं तीसरा वर नहीं माँग सकती। क्षत्रियकी स्त्रीको दो वरसे अधिक माँगनेका अधिकार नहीं है। मेरे पति दासभावसे छूट गये, इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं चाहिये। उस समय कर्णके मुँहसे बरबस निकल पड़ा कि 'संसारमें जितनी स्त्रियोंकी प्रशंसा मैंने सुनी है, उनमें एककी बात भी ऐसी नहीं सुनी जो द्रौपदीके समान हो सके। द्रौपदी त्रिभुवनमें अनुपम है।' धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको बुलाकर उन्हें आज्ञा दी कि 'तुम अपना सब धन-सम्पत्ति, दास-दासी, रथ, घोड़े, हाथी आदि जो कुछ हार गये थे; सब लेकर इन्द्रप्रस्थ लौट जाओ और वहाँ कौरवोंके दुर्भावोंको भूलकर शान्तिसे राज्य करो।' द्रौपदीको लेकर सब लोग प्रसन्नतापूर्वक खाण्डवप्रस्थके लिये रवाना हुए।

(७)

जो होनेवाला होता है, वह होकर ही रहता है। भगवान्‌की इच्छा, जीवोंका प्रारब्ध और प्रकृतिकी अनुल्लंघनीय धाराका किसी प्रकार उल्लंघन नहीं किया जा सकता। सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, शीत-उष्ण और पाप-पुण्यका किसी प्रकार मेल नहीं हो सकता। न्याय और अन्यायमें कभी समझौता नहीं हो सकता। ये सब बातें अटल हैं? इनके विपरीत जो चेष्टा करते हैं, वे कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। इनके बारेमें पहलेसे ही निश्चय किया जा चुका है। पाण्डवके जीवनमें हम यह बात बहुत ही स्पष्टरूपसे देखते हैं कि उनका कौरवोंके साथ मेल करानेके लिये बड़े-बड़े महापुरुषोंने चेष्टा की, परंतु वह सफल नहीं हुई। ऐसा क्यों हुआ? इसका उत्तर यही है कि

दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्तिका समन्वय कभी हो ही नहीं सकता। यदि कभी होता हुआ-सा दीखता है तो वह क्षणिक होता है और फिर टूटते देर नहीं लगती। अभी-अभी हम इस बातको देख सकते हैं।

धृतराष्ट्रने धर्मराज युधिष्ठिरकी सारी सम्पत्ति लौटा दी; उन्हें दासतासे मुक्त कर दिया और वे अपनी राजधानीके लिये रवाना हुए। यदि वह बात यहीं समाप्त हो जाती तो फिर आगे कोई झगड़ा न होता। परंतु ऐसा नहीं हुआ, दुःशासनकी प्रेरणा और शकुनिकी सलाहसे दुर्योधनने अपने पिताके पास जाकर बहुत कुछ उलटा-सीधा समझाया और पुनः जुआ खेलनेकी अनुमति ले ली। गान्धारीके बहुत मना करनेपर भी पुत्र-मोहके कारण धृतराष्ट्रने जुआ खेलनेकी आज्ञा दे दी। उनके पुत्रोंने जाकर युधिष्ठिरको रास्तेमेंसे ही लौटा दिया। युधिष्ठिरने भी दैवकी ऐसी ही इच्छा समझकर उनका द्यूत-रण-निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और वे अपने भाइयोंके साथ वहाँ लौट आये।

शकुनिने कहा—'राजन्! बूढ़े राजाने आपकी सारी सम्पत्ति लौटा दी और आपको दासत्वसे मुक्त कर दिया, यह बहुत ही अच्छा किया, अब हम एक दूसरे प्रकारकी बाजी लगाकर चौसर खेलना चाहते हैं। इस बार हम ऐसी बाजी लगा रहे हैं कि यदि हमलोग हार जायँगे तो बारह वर्षतक वनमें रहेंगे, तेरहवें वर्षमें अज्ञातवास करेंगे। उस समय आप हमारा पता नहीं पा सकेंगे। यदि उस वर्षमें हमारा पता लग जाय तो हम फिर बारह वर्षतक वनवास करें। वनमें मुनियोंके वेषमें रहना होगा। ऐसे ही यदि आप हार जायँगे तो आपको भी द्रौपदीके साथ ऐसा ही करना पड़ेगा। इस प्रकार तेरह वर्ष बिता चुकनेपर हम या आप अपना-अपना राज्य प्राप्त कर सकेंगे। कहिये, आपको स्वीकार है न?' शकुनिकी बात सुनकर सभी सभासद् उसको धिक्कारने लगे; परंतु धर्मराज युधिष्ठिरने स्वीकार कर लिया। शेष पाण्डवोंकी इच्छा न होनेपर भी वे

युधिष्ठिरके विपरीत भला क्या बोल सकते थे? शकुनिने 'मैं जीत गया' यह कहते हुए पासे फेंके और (कपटके पासे होनेसे) सचमुच ही जीत गया। वनमें जानेकी तैयारी होने लगी, पाण्डवोंने राजसी पोशाक उतारकर मृगचर्म धारण किये। दु:शासन उन्हें चिढ़ाने लगा, द्रौपदीको भी वह बहुत कुछ भला-बुरा कहने लगा। भीमसेन धर्मराजके अधीन और धर्मसे बँधे होनेके कारण कुछ कर नहीं सकते थे। उन्होंने दु:शासनको डाँटते हुए कहा—'दु:शासन! युद्धभूमिमें मैं तुम्हें इन बातोंकी याद दिला-दिलाकर मारूँगा!' सारी सभाको सुनाकर भीमसेनने प्रतिज्ञा की कि 'पापी दुर्योधनको गदा-युद्धमें मारकर मैं इसके सिरपर पैर रखूँगा और इस बकवादी दु:शासनके हृदयको चीरकर मैं इसका खून अवश्य पीऊँगा।' शीघ्र ही देवतालोग मेरी यह प्रतिज्ञा पूरी करेंगे।

अर्जुनने कहा—'सज्जनोंका यह नियम है कि जो कुछ करना चाहते हैं, उसे करनेके पहले अपने मुँहसे नहीं निकालते; फिर भी मैं आज भरी सभामें इतना तो कह ही देता हूँ कि आजके चौदहवें वर्ष जो कुछ होगा, उसे आपलोग अपनी आँखोंसे देखेंगे।' भीमसेनने कहा—'उस समय पृथिवी दुर्योधन, कर्ण, दु:शासन और शकुनिके रक्तसे तर हो जायगी।' अर्जुनने कहा—'भैया भीम! मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये यह घोषित करता हूँ कि मैं अपने मुँहसे बड़ाई करनेवाले, बुरी सलाह देनेवाले, परदोषदर्शी और हिंसा-द्वेषपरवश कर्णको अवश्य मारूँगा। न केवल कर्णको, जो उसकी सहायता करेंगे, जो मोहवश मुझसे लड़ने आयेंगे, उन सबको मैं यमपुरीमें पहुँचाऊँगा। यदि आजके चौदहवें वर्षके प्रारम्भमें सम्मानके साथ हमारा राज्य हमें नहीं दे दिया गया तो मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि चाहे हिमालय अपने स्थानसे हट जाय, सूर्य प्रकाश देना बंद कर दे, चन्द्रमा उष्णताकी वर्षा करने लगे, परंतु मेरी प्रतिज्ञा झूठी नहीं हो सकती!' प्रतापी सहदेवने क्रोधसे आँखें लाल-

लाल करके हाथ उठाकर कहा—'कुरुकुलके नाशक शकुनि! तू जिन्हें पासे समझा है वे पैने बाण हैं; ये ही तेरे प्राणोंके ग्राहक बनेंगे। मैं आज ही बतला देता हूँ कि युद्धभूमिमें मैं तुझे और तेरे मित्रोंको सदाके लिये धराशायी कर दूँगा!' नकुलने कहा—'महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे द्रौपदीका प्रिय करनेके लिये धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मैं अवश्य मारूँगा।' महाराज युधिष्ठिर इनकी प्रतिज्ञा सुनकर भी कुछ नहीं बोले। वे समझ रहे थे कि यही सब होनेवाला है।

युधिष्ठिरने पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र तथा अन्य उपस्थित नरपतियोंको सम्बोधन करके कहा—'मैं अपने भाइयों और पत्नीके साथ वनमें जा रहा हूँ; आपलोग प्रसन्नतासे हमारा प्रणाम स्वीकार करके आशीर्वाद दीजिये और हम सब सकुशल लौटकर आपलोगोंके दर्शन कर सकें, ऐसी कृपा कीजिये।' सब लोगोंने मन-ही-मन धर्मराज युधिष्ठिरको आशीर्वाद दिया। विदुरने कहा—'युधिष्ठिर! आर्या कुन्ती बूढ़ी हैं, वे सदा सुखमें ही रही हैं। उन्हें वनके दुःखोंका ज्ञान नहीं है, इसलिये उनका वनमें जाना ठीक नहीं है। वे यहीं मेरे घरमें आदर-सत्कारके साथ रहें! तुमलोग मेरी यह बात मान लो, भगवान् सर्वत्र तुम्हारा भला करेंगे।' युधिष्ठिरने उनकी बात मान ली और उन्हें अपने लिये उपदेश देनेको कहा।

विदुरने कहा—'धर्मराज! तुम धर्मके विशेषज्ञ हो; तुम यह जानते ही हो कि यदि किसी धार्मिक पुरुषको कोई अधर्मसे ठग ले या धोखा दे दे तो वह व्यथित नहीं होता। तुम्हारे सभी भाई, पुरोहित और द्रौपदी एक-से-एक बढ़कर हैं। सब-के-सब धार्मिक हैं और आपसमें सबका प्रेम है। तुमलोगोंमें फूट नहीं पड़ सकती, नियमपालनके कारण तुम्हारा मन स्वस्थ रहता है। शत्रु तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। हिमाचलपर मेरुसावर्णि ऋषिने, वारणावत नगरमें कृष्णद्वैपायन व्यासने, भृगुतुंगपर परशुरामने, दृषद्वतीके तटपर

भगवान् शंकरने, अंजन पर्वतपर महर्षि असितने, कल्माषी नदीके तटपर महर्षि भृगुने तुम्हें उपदेश किया है। देवर्षि नारद सदा तुम्हारी देख-रेख किया करते हैं। महर्षि धौम्य तुम्हारे पुरोहित हैं, उनके उपदेशोंको तुम कभी मत भूलना। तुम बुद्धिमें पुरूरवासे, धर्मके आचरणमें ऋषियोंसे, क्रोध रोकनेमें यमराजसे, उदारता और दानमें कुबेरसे, इन्द्रिय-संयममें वरुणसे भी बढ़कर हो। तुम चन्द्रमासे शान्ति, जलसे परोकार-वृत्ति, पृथ्वीसे क्षमा, सूर्यसे तेज, वायुसे बल और समस्त प्राणियोंसे आत्म-सम्पत्ति प्राप्त करो। कुल-देवता तुम्हें नीरोग रखें, लौटनेपर मैं तुम्हें सकुशल देखूँगा, तुम्हारा कल्याण हो, आजतक तुमने कभी अधर्म नहीं किया है, आगे भी तुम्हारे द्वारा कभी अधर्म न हो।'

विदुरके उपदेश सुनकर धर्मराजने बड़े-बूढ़ोंको प्रणाम किया और वे चलनेके लिये उद्यत हुए। उधर द्रौपदी कुन्ती एवं अन्यान्य कुलकी वृद्ध स्त्रियोंको प्रणाम करके जब पाण्डवोंके साथ वनमें जानेको तैयार हुई, तब चारों ओर आर्तनाद होने लगा। कुन्तीका गला रुँध-सा गया, वे अचेत हो गयीं। बड़े कष्टसे उन्होंने अपनेको सँभालकर द्रौपदीसे कहा—'बेटी! तुम साध्वी, सुशीला और पतिव्रता हो। तुम धर्मको जानती हो और सदाचारका पालन करती हो। तुमने अपने गुणोंसे पिता और पति दोनोंके ही कुलको उज्ज्वल किया है। स्वामीके साथ स्त्रीका कैसा बर्ताव होना चाहिये, यह तुम्हें बतानेकी आवश्यकता नहीं है। दुःखमें पड़कर कभी शोकसे अधीर मत होना, मैं तुम्हारे मंगलकी कामना करती हूँ। ग्लानि मत करना, धर्म और गुरुजन तुम्हारी रक्षा करेंगे; सहदेवका विशेष खयाल रखना। वह अभी बालक ही है।'

एकवस्त्रा द्रौपदीने कुन्तीकी आज्ञा स्वीकार की। जब द्रौपदी आज्ञा लेकर बाहर निकली तब उसके बाल बिखरे हुए थे। द्रौपदी अपने पतियोंके पीछे-पीछे चलने लगी। विदुरने कुन्तीको समझा-

बुझाकर लौटा दिया। यात्राके समय पाण्डव भिन्न-भिन्न प्रकारसे चल रहे थे। युधिष्ठिर अपनी आँखें बंद किये हुए थे; इसका कारण यह था कि वे पाण्डवोंकी भाँति ही कौरवोंपर भी स्नेह रखते थे। वे सोचते थे कि यदि मैं क्रोधकी दृष्टिसे दुर्योधनको देखूँगा तो वह भस्म हो जायगा। इसीसे वे अपना मुँह और आँखें ढके हुए थे। भीमसेन बार-बार अपनी बाँहोंको देखते हुए जा रहे थे; इसका मतलब यह था कि बाहुबलमें मेरे समान और कोई नहीं है, युद्धमें इन बाहुओंसे मुझे घोर कर्म करना पड़ेगा। अर्जुन धूल उड़ाते हुए जा रहे थे, इसका अभिप्राय यह था कि वे युद्धमें वैसी ही बाण-वर्षा करके शत्रुओंका संहार करेंगे। नकुलने सारे शरीरमें मिट्टी लगा ली थी; इसका कारण यह था कि वे बहुत ही सुन्दर थे, रास्तेमें उन्हें देखकर स्त्रियाँ मोहित न हो जायँ। सहदेवने अपने मुँहपर मिट्टी लगा ली थी, इसका अर्थ यह था कि कोई मुझे पहचान न सके; क्योंकि शायद उन्हें कुछ लज्जा मालूम हो रही थी! द्रौपदी एक वस्त्र पहने रोती हुई अपने बाल बिखेरे हुए जा रही थी। इसका तात्पर्य यह था कि आज जिस रूपमें मैं जा रही हूँ, आजके चौदहवें वर्ष उसी रूपमें कौरवोंकी स्त्रियोंको भी अपने सम्बन्धियोंको तिलोदक देनेके लिये जाना पड़ेगा। धीर पुरोहित धौम्य कुश हाथमें लिये भयंकर यमदेवता-सम्बन्धी साम पढ़ते जा रहे थे। इसका उद्देश्य यह था कि कौरवोंके मरनेपर इसी प्रकार उनके पुरोहित भी इन मन्त्रोंका उच्चारण करेंगे।

पाण्डवोंके वन-गमनके समय सारे हस्तिनापुरमें हाहाकार मच गया। स्त्रियाँ रो रही थीं, पुरुष विलाप कर रहे थे। कौरवोंको छोड़कर ऐसा कोई नहीं था, जिसकी आँखोंमें आँसू न आ गये हों। पशु-पक्षीतक रोने लगे। जिस द्रौपदीको बड़े-बड़े देवता भी नहीं देख सकते थे, उसे आज पैदल चलनेवाले गाँवके लोग भी देखने लगे। जो पाण्डव पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् थे, उन्हें पहननेके लिये आज

वस्त्र भी नहीं थे। द्वारकामें अस्त्र-विद्या सीखनेके लिये गये हुए नन्हें-नन्हें बच्चोंको खबर भी नहीं दी जा सकी। जन्मभरसे जिसकी सेवा की गयी, उस माताको भी छोड़ना पड़ा। दूधके फेनके समान शय्यापर सोनेवाले पाण्डवोंको आज जमीनमें भी सोनेकी जगह मिलेगी या नहीं—इसमें संदेह हो गया। भला, किस सहृदयका हृदय न बिहर उठेगा, किसका कलेजा नहीं थर्रा जायगा। देवर्षि नारद चमकते हुए झम्मसे आकाशमण्डलसे उतरे और धृतराष्ट्रकी सभामें प्रकट होकर बोले—'धृतराष्ट्र! आजके चौदहवें वर्ष भीमसेन और अर्जुनके बलसे समस्त कौरवोंका नाश हो जायगा।' इतना कहकर वे झटपट अन्तर्धान हो गये। पाण्डव आगे बढ़ते ही गये। द्रोणाचार्यने समझाया, भीष्मपितामहने समझाया, अनेकानेक ऋषियोंने समझाया, परंतु दुर्योधन अपने हठसे न हटा! न हटा!!

द्रौपदीके अपमानसे सभीको दुःख था। प्रजाने शोक मनाया, ब्राह्मणोंने एक दिन अपना नित्यकर्म अग्निहोत्र बंद कर दिया। प्रकृतिने अपने विरोधका विपुल प्रदर्शन किया, प्रचण्ड आँधी चलने लगी। बिजली कड़कने लगी, उल्कापात होने लगे। रथशालाओंमें आग लग गयी, ध्वजाएँ टूट गयीं, सियार और गधे चिल्लाने लगे। धृतराष्ट्रने कहा—'द्रौपदीकी क्रोधपूर्ण दृष्टिसे सारी पृथ्वी भस्म हो सकती है।' वास्तवमें सतियोंमें ऐसी ही शक्ति होती है। उनके अपमानसे रावण और कौरवों-जैसे लोगोंका भी सत्यानाश हो जाता है, औरोंकी तो बात ही क्या है।

पाण्डव और द्रौपदीके वनवासका समाचार चारों ओर फैल गया। देश-देशके राजा उनसे सहानुभूति प्रकट करनेके लिये वनमें आने लगे। चेदि देशके नरेश धृष्टकेतु, केकय देशके नरेश और भोज, अन्धक एवं वृष्णिवंशके यादव श्रीकृष्णको आगे करके दुर्योधनकी निन्दा करते हुए युधिष्ठिरसे मिलनेके लिये आये। पाण्डवोंने यथावसर सबका स्वागत किया। सबके बैठ जानेपर खेदपूर्ण हृदयसे भगवान्

श्रीकृष्णने पाण्डवोंसे कहा—'अब यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो गयी है कि कौरवोंने स्वार्थवश पाण्डवोंके साथ छल एवं बेईमानी की है। उन पापियोंका खून पीनेके लिये पृथिवी प्यासी हो गयी है, अब वे दिन दूर नहीं हैं, जब ये दुष्ट अपने अनुचरों और बन्धु-बान्धवोंसहित मारे जायँगे और धर्मराज युधिष्ठिर राजगद्दीपर बैठेंगे। इन आततायी, धोखेबाज, दुरात्माओंको मार डालना ही सनातन धर्मके अनुकूल है। मैं यह सब काम स्वयं करूँगा।' इतना कहते-कहते श्रीकृष्ण अधीर हो उठे। ऐसा जान पड़ा, मानो वे सब लोकोंको जला डालेंगे। अर्जुनने उनकी स्तुति की।

अर्जुनने कहा—'श्रीकृष्ण! तुम लोक-संचालनके एकमात्र कारण हो, सब क्षेत्रोंमें एकमात्र क्षेत्रज्ञ तुम्हीं हो। तुम सभी तत्त्वों और प्राणियोंके आदि तथा अन्त हो। तुम तपस्याके आधार नित्य-यज्ञस्वरूप हो। तुम्हींने इन्द्रको इन्द्र बनाया है। तुम्हीं नारायण हो और तुम्हीं सब नामों, रूपों, दिशाओं, कालों और वस्तुओंके रूपमें प्रकट हो रहे हो। तुम्हींने सूर्यको प्रकाशित कर रखा है। अवतार लेकर तुमने अनेकों असुरोंका विनाश किया है। जगत्के दोष तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकते। बड़े-बड़े महर्षि अपने हृदय-कमलमें तुम्हारा चिन्तन करते हैं। प्रलयके समय सारा विश्व तुम्हारे अंदर लीन हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तुम्हारे ही शरीरसे उत्पन्न हुए हैं, तुम्हीं हमलोगोंके रक्षक हो। हम तुम्हारे ही भरोसेपर हैं, हम तुम्हारी ही शरणमें हैं।' जब इतना कहते-कहते अर्जुनका कण्ठ गद्गद हो गया, उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे और वे आगे कुछ बोल न सके, तब भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा—'मेरे प्यारे अर्जुन! तुम मेरे ही हो और मैं तुम्हारा ही हूँ, जो मेरे हैं, वे तुम्हारे हैं। मेरे पास जो कुछ है, उसपर तुम्हारा अधिकार है। जो तुमसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है। जो तुम्हारे पीछे चलता है, वह मेरे पीछे चलता है। वीर अर्जुन! तुम नर हो, मैं नारायण

हूँ। हम दोनों समयके अनुसार लोगोंके कल्याणके लिये यहाँ अवतीर्ण हुए हैं। तुम मुझसे अभिन्न हो और मैं तुमसे अभिन्न हूँ। हम दोनोंमें तनिक भी भेद नहीं है।'*

अर्जुन और श्रीकृष्णकी बातचीतके समय द्रौपदी भी वहाँ बैठी हुई थी। धृष्टद्युम्न आदि भाई उसको घेरे हुए थे। उसके हृदयमें करुणा, आत्मसम्मान और धर्मराज्यकी प्रतिष्ठाकी अभिलाषा जग रही थी। उसके चित्तमें दुर्योधन आदि असुरभावापन्न लोगोंके नाशके लिये बहुत ही उत्साह था। वह श्रीकृष्णसे कहने लगी—'कमलनयन श्रीकृष्ण! मैंने असित-देवल ऋषिके मुँहसे सुना है कि तुम सारी सृष्टिके मूल हो। जामदग्न्य परशुरामने तुम्हें विष्णु, यज्ञ, यजमान और यजनीय कहा है। बड़े-बड़े ऋषियोंने तुम्हें मूर्तिमान् सत्य और क्षमा कहा है। कश्यप और नारदने बतलाया है कि 'तुम ईश्वरोंके भी ईश्वर हो और जैसे बालक नन्हें खिलौनेसे खेला करता है, वैसे ही तुम ब्रह्मा, शंकर और इन्द्रादि देवताओंके साथ खेला करते हो। सारी प्रकृति और सारे प्राकृत पदार्थ तुम्हारे अन्तर्भूत हैं। आत्मदर्शनसे तृप्त ऋषिगण तुम्हारा ही भजन किया करते हैं। सबके एकमात्र आश्रय तुम्हीं हो। तुम प्रभु, विभु, भूतात्मा और सर्वत्र विराजमान हो। लोक, लोकपाल, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य, दिशाएँ और आकाश—सब तुममें प्रतिष्ठित हैं। देवताओंकी दिव्यता और मनुष्योंकी मनुष्यता तुम्हारे ही द्वारा सृष्ट है।' मैं तुमसे अपना दुखड़ा क्या रोऊँ, तुम अन्तर्यामी हो; फिर भी प्रेमके कारण हृदयकी बात कहे बिना रहा नहीं जाता।

---

* ममैव त्वं तवैवाहं ये मदीयास्तवैव ते।
यस्त्वां द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्त्वामनु स मामनु॥
नरस्त्वमसि दुर्द्धर्ष हरिनारायणो ह्यहम्।
काले लोकमिमं प्राप्तौ नरनारायणावृषी॥
अनन्यः पार्थ मत्तस्त्वं त्वत्तश्चाहं तथैव च।
नावयोरन्तरं शक्यं वेदितुं भरतर्षभ॥

'श्रीकृष्ण! मैं धृष्टद्युम्नकी बहिन हूँ, वीर पाण्डवोंकी पत्नी हूँ और तुम मुझसे स्नेह करते हो। ऐसी अवस्थामें क्या यह लज्जाजनक नहीं है कि मैं रजस्वला होनेपर भी भरी सभामें गुरुजनोंके बीच खींचकर लायी जाऊँ और मुझे नग्न करनेकी चेष्टा की जाय? उस समय लोग मुझे देखकर हँस रहे थे। पाण्डवोंके जीवित रहते ही दुष्टोंने मुझसे दासीका-सा व्यवहार किया और गंदी-गंदी बातें बकीं। मैं महात्मा भीष्म और धृतराष्ट्रकी कुलवधू हूँ। मैं इन पाण्डवोंसे क्या आशा रख सकती हूँ। इनके बाहुबलको, इनकी युद्धचातुरीको बारम्बार धिक्कार है। इन्होंने अपनी धर्मपत्नीको इस प्रकार अपमानित होते एवं कष्ट पाते देखकर भी लापरवाही की। मैं भीमसेनके बल और अर्जुनके गाण्डीव धनुषको धिक्कारती हूँ, क्योंकि उन्होंने अपनी आश्रित धर्मपत्नीकी रक्षारूप धर्म-पालन नहीं किया।

'मैं स्त्री हूँ, यह सत्य है, परंतु पुरुषोंके लिये यह नियम है कि स्त्रीपर कोई आपत्ति आ जाय तो वह चाहे कितना ही निर्बल क्यों न हो, प्राणपणसे उसकी रक्षा करे। स्त्रीके सुरक्षित रहनेसे ही सुन्दर संतान प्राप्त हो सकती है, स्त्रीकी रक्षाके बिना पुरुष अरक्षित है। पाण्डवोंने मुझ शरणागतकी प्रार्थनापर ध्यान नहीं दिया, इन्हें कम-से-कम अपने पुत्रोंकी रक्षाके लिये ही मेरी रक्षापर ध्यान देना था। परंतु इन्होंने उस समय कुछ नहीं किया। यह बात भी नहीं कि कौरवोंका वह पहला ही अपराध रहा हो। बचपनसे ही ये लोग जानते हैं कि कौरव इनसे शत्रुता रखते हैं। जब पाण्डव विद्या पढ़ते थे, इनके मनमें कोई ईर्ष्या-द्वेष नहीं था, तब उन्होंने कपटपूर्वक इनको राज्यसे बाहर निकाल दिया। भीमसेनके भोजनमें कालकूट विष डालकर उन्हें मार डालनेकी चेष्टा की गयी। भीमसेनका भाग्य था कि वे बच गये। जब वे गंगातटपर बेखटके सो रहे थे, तब उन दुष्टोंने भीमसेनको बाँधकर गंगामें डुबो दिया, उन्हें सोतेमें साँपसे कटवाया, लाक्षागृहमें रखकर इन लोगोंको जला डालनेकी चेष्टा की। कितनी आपत्तियोंका

वर्णन करूँ, पाण्डवोंका जीवन प्रारम्भसे ही विपत्तिमय ही रहा है। मैं आज अपने बच्चोंसे बिछुड़ी हुई हूँ, मेरी सास आर्या कुन्ती मेरे पास नहीं हैं। मेरा हृदय दुःख और संतापसे हर घड़ी जलता रहता है। मुझे यह बात कभी नहीं भूलती कि दुःशासनने पाण्डवोंके सामने ही मेरे केश पकड़कर खींचे। मैं क्रोधसे जली जा रही हूँ। इतना कहते-कहते द्रौपदीका गला भर आया; उनकी आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी। उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे अपना मुँह ढक लिया, वे कुछ बोल न सकीं।'

थोड़ी देरके बाद अपनेको सँभालकर लम्बी साँसें लेती हुई और आँखें पोंछती हुई द्रौपदी कहने लगी—'श्रीकृष्ण! इतने दिनोंपर, मुझे मालूम हुआ कि मेरे पति, पुत्र, भाई, बन्धु, पिता-माता—कोई नहीं हैं और तो क्या कहूँ; श्रीकृष्ण! तुम भी मुझसे उदासीन हो। ऐसा न होता तो क्या तुमलोग मेरा अपमान सहन कर सकते! वह दुःख अब भी मेरी छाती जला रहा है, जो कर्णको उस समय हँसते देखकर हुआ था। श्रीकृष्ण! चार कारण ऐसे हैं, जिनसे तुम्हें सर्वदा मेरी रक्षा करनी चाहिये। एक तो तुम मेरे सम्बन्धी हो, दूसरे तुम मेरे सखा हो, तीसरे मैं यज्ञवेदीसे उत्पन्न हुई हूँ और चौथे तुम प्रभु हो।* अब तुम मेरी उपेक्षा नहीं कर सकते, तुम्हें मेरी रक्षा करनी ही पड़ेगी।'

द्रौपदीके इतना कहकर चुप हो जानेपर वीरोंके सामने ही भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'देवि! तुम जिनपर क्रोधित हुई हो, उनकी स्त्रियाँ भी इसी प्रकार रोयेंगी। अर्जुनके बाणोंसे उनके पतियोंका सिर कट

---

* नैव मे पतयः सन्ति न पुत्रा न च बान्धवाः।
न भ्रातरो न च पिता नैव त्वं मधुसूदन॥
ये मां विप्रकृतां क्षुद्रैरुपेक्षध्वं विशोकवत्।
न च मे शाम्यते दुःखं कर्णो यत् प्राहसत्तदा॥
चतुर्भिः कारणैः कृष्ण त्वया रक्ष्यास्मि नित्यशः।
सम्बन्धाद्गौरवात् सख्यात् प्रभुत्वेनैव केशव॥

जायगा। वे खूनसे लथपथ होकर जमीनपर सो जायँगे और उनकी स्त्रियाँ उन्हें अपनी आँखों देख-देखकर रोयेंगी। जो कुछ पाण्डवोंके अनुरूप है, वही मैं करूँगा। मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं तुम्हें राजरानी बनाऊँगा। द्रौपदी! चाहे स्वर्गलोक नीचे गिर पड़े, हिमालय फट जाय, पृथिवी टुकड़े-टुकड़े हो जाय, समुद्र सूख जाय; परंतु मेरी बात कभी व्यर्थ नहीं हो सकती।'*

भगवान्‌की बात सुनकर द्रौपदीने टेढ़ी नजरसे अर्जुनकी ओर देखा। अर्जुनने कहा—'प्रिये! श्रीकृष्णने जैसा कहा है, वैसा ही होगा।' उनकी बात कभी झूठी नहीं हो सकती। धृष्टद्युम्नने कहा—'बहिन! तुम दुःख क्यों करती हो। मैं द्रोणको मारूँगा। मेरा भाई शिखण्डी भीष्मको मारेगा, दुर्योधनको भीमसेन और कर्णको अर्जुन मार डालेंगे; भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके आश्रयसे हम युद्धमें अजेय हैं। इन्द्र भी हमारा बाल बाँका नहीं कर सकते, कौरवोंमें तो रखा ही क्या है। द्रौपदीको बड़ा संतोष हुआ। उसे ऐसा दीखने लगा मानो कौरवोंका संहार हो चुका।'

भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे कहा—'यदि मैं उस समय द्वारिकामें होता तो आपलोगोंको यह कष्ट नहीं उठाना पड़ता। मैं जुएकी खबर सुनकर वहाँ बिना बुलाये आ जाता और जुएका अनर्थमय परिणाम दिखाकर सबको रोक लेता। जुएसे बढ़कर संसारमें अनर्थका कारण और कोई नहीं है। शास्त्रोंमें जुएको समस्त दुःखोंका

---

* रोदिष्यन्ति स्त्रियो ह्येवं येषां क्रुद्धासि भाविनि।
बीभत्सुशरसंछन्नान् शोणितौघपरिप्लुतान्॥
निहतान् वल्लभान् वीक्ष्य शयनान् वसुधातले।
यत् समर्थं पाण्डवानां तत् करिष्यामि मा शुचः॥
सत्यं ते प्रतिजानामि राज्ञां राज्ञी भविष्यसि।
पतेद् द्यौर्हिमवान् शीर्य्येत् पृथिवी शकलीभवेत्॥
शुष्येत् तोयनिधिः कृष्णे न मे मोघं वचो भवेत्।

मूल बतलाया है। जुएसे मनुष्यका सर्वनाश हो जाता है; जुएका कुफल नलने भोगा था, वही आज आपके मत्थे आ पड़ा। उन दिनों मैं शाल्वका वध करने चला गया था, वह शिशुपालका मित्र था। आपके यज्ञमें शिशुपालके मारे जानेसे मेरी अनुपस्थितिमें उसने द्वारकापर चढ़ाई कर दी थी, वहाँके रहनेवालोंको बहुत पीड़ित किया था। जब मैं उसे मारकर लौटा, तब जुएका समाचार मुझे मालूम हुआ; परंतु अब किया ही क्या जा सकता है। अब आप स्वयं ही अपने वचनोंके बन्धनमें पड़ गये हैं। अब कुछ दिनोंतक यह कष्ट सहना ही पड़ेगा।' इस प्रकार युधिष्ठिर आदिको समझाकर सबसे यथायोग्य मिलकर भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकाकी यात्रा की। श्रीकृष्णके वियोगसे द्रौपदीको बड़ा दुःख हुआ। सभी सगे-सम्बन्धी चले गये, द्रौपदीके साथ पाण्डव वहाँ निवास करने लगे।

(८)

जिनका धर्मसे प्रेम है, वे कैसी भी परिस्थितिमें पड़ जायँ, धर्म उनका साथ नहीं छोड़ सकता है। वे स्वयं आश्रयहीन होनेपर भी दूसरोंके आश्रय होंगे। वे स्वयं उपकारके पात्र होनेपर भी दूसरोंका उपकार करेंगे। जो सर्वदासे दूसरोंको देते चले आये हैं, वे अपने पास कुछ न रहनेपर भी दूसरोंको कुछ-न-कुछ देंगे ही। इसके ठीक विपरीत जो अधर्मसे प्रेम करते हैं, अन्यायको आश्रय देते हैं, परपीडनमें ही उत्साह रखते हैं, वे चाहे कितनी भी अच्छी परिस्थितिमें पहुँचा दिये जायँ, अपनी दुष्टता नहीं छोड़ेंगे। यह बात कौरव और पाण्डवोंके चरित्रमें बहुत स्पष्टरूपसे दीखती है।

जिस समय द्रौपदीके साथ पाण्डवोंने वनवासके लिये यात्रा की थी, उसी समय बहुत-से ब्राह्मण उनके साथ हो गये थे। उन्होंने आग्रह किया कि 'हम साथ ही रहेंगे, पाण्डव-जैसे धर्मात्माको छोड़कर हम और किसकी शरणमें जायँ?' युधिष्ठिरने बड़ी अनुनय-विनय की कि 'ब्राह्मणो! आप हमारे साथ कहाँ जायँगे? हमारा

सर्वस्व हर लिया गया, इस समय हम श्रीभ्रष्ट हैं। वनमें फल-मूल खाकर रहना पड़ेगा, वहाँ बहुतसे हिंसक पशु हैं, हम वहाँ अपने साथ ले जाकर आपको दु:खी नहीं देखना चाहते। मेरे छोटे भाई जो फल-फूल आदि लाकर आपलोगोंको संतुष्ट कर सकते थे, वे द्रौपदीकी दारुण बिडम्बनासे शिथिल पड़ रहे हैं। वे यदि आपलोगोंका आतिथ्य करनेमें समर्थ न हो सकेंगे तो मुझे बड़ी पीड़ा होगी।' ब्राह्मणोंने कहा—'राजन्! हम तो आपके साथ ही चलेंगे। हमारे भोजन-वस्त्रकी आप चिन्ता न करें। हम अपनी जीविका स्वयं कर लेंगे और जप तथा ध्यानके द्वारा आपकी भलाई करते रहेंगे, इसके अतिरिक्त समय-समयपर सुन्दर-सुन्दर कथा सुनाकर आपका मन भी बहलायेंगे।'

युधिष्ठिरने कहा—'मेरे हृदयमें आपलोगोंके प्रति कितनी श्रद्धा, कितनी भक्ति और कितना प्रेम है—यह मैं नहीं कहना चाहता, नहीं कह सकता। आपलोगोंकी सहायतासे हमारे क्लेश और संताप दूर होंगे इसमें भी संदेह नहीं, परंतु मेरी दारुण अवस्था मुझे हताश कर रही है! आपलोग हमपर कृपा करके हमारे साथ ही रहना चाहते हैं, यह ठीक है; परंतु यह मैं किस प्रकार देख सकूँगा और सहन कर सकूँगा कि मेरे साथ रहनेवाले ब्राह्मण मेरे पास भोजन न करें, दूसरेके पास जायँ। मेरा जीवन व्यर्थ है; मुझे धिक्कार है। क्या अब मुझे यही करना बाकी है?'

उन ब्राह्मणोंमें शौनक नामके विद्वान् अध्यात्मविद्यामें बड़े निपुण थे। उन्होंने कहा—'महाराज! संसारमें जहाँ देखो, वहीं भय और शोकके सैकड़ों निमित्त हैं। यदि उनसे घबराते रहें तो पैर रखनेकी जगह न मिले। परंतु तत्त्वज्ञलोग किसी भी परिस्थितिमें कभी नहीं घबराते। सब प्रकारकी परिस्थितिमें संतोष ही ज्ञानी पुरुषका लक्षण है। आशा और तृष्णाका अन्त नहीं है, मूर्ख ही उनके चक्करमें चकराते रहते हैं। संसारमें कौन ऐसा धनी है, जो निरुपद्रवभावसे

अपना जीवन व्यतीत करता है। धन स्वयं व्याधि है, धनको एक-न-एक दिन छोड़ना ही पड़ता है। जब छोड़ना ही पड़ता है, तब उसका संग्रह क्यों किया जाय? जब कीचड़को धोना ही है, तब लगाया ही क्यों जाय?' राजन्! आपकी बातोंसे ऐसा मालूम पड़ता है कि आप धनके लिये चिन्तित हैं और सोचते हैं कि यदि मेरे पास धन होता तो इन ब्राह्मणोंको खिलाकर प्रसन्न होता। परंतु आपकी यह चिन्ता उचित नहीं है? आप स्वयं कुछ मत सोचिये, भगवान्‌की देनपर प्रसन्न रहिये।

युधिष्ठिरने कहा—'ब्राह्मणदेवता! मुझे धनका अभाव खटकता अवश्य है, परंतु मैं अपने लिये धन नहीं चाहता। सोचिये—मैं गृहस्थ हूँ, मेरे साथ कई व्यक्ति हैं, मुझपर कृपा करनेवाले अनेकों ब्राह्मण हैं। उनका भरण-पोषण किये बिना हम कैसे रह सकते हैं। मेरे पास कोई भूखा आये और मैं उसे भोजन न दे सकूँ, यह मेरे लिये कितने दुःखकी बात है! क्या मैं अतिथियोंको खिलाये बिना ही खा लूँ? क्या मैं कुत्ते, चाण्डाल और पक्षियोंके लिये पृथ्वीपर अन्न रखकर बलिवैश्वदेव किये बिना ही भोजन कर लूँ? आप कहते हैं कि धनके लिये चिन्तित नहीं होना चाहिये, यह ठीक है; परंतु आप ही बतलाइये कि इतना सुन्दर उपदेश करनेवाले आपको भोजन कराये बिना मैं कैसे भोजन करूँ?'

शौनक बोले—'महाराज! बड़े कष्टकी बात है। जगत्‌में उलटी ही बात देख पड़ती है। साधु पुरुष जिससे लज्जित होता है, दुष्ट उसीसे संतुष्ट होता है। मैं आपकी परोपकार-वृत्ति देख रहा हूँ, आपके कष्टसे मुझे भी कष्ट हो रहा है। आप तपस्या करके अपना मनोरथ पूर्ण कर सकते हैं।'

धौम्यकी सम्मतिसे महाराज युधिष्ठिरने सूर्यकी उपासना की। आराधना करके उन्होंने सूर्यकी स्तुति की। उनकी स्तुतिसे भगवान् सूर्य प्रसन्न हुए और उनके सामने प्रकट होकर उन्होंने वरदान दिया

कि 'तुम्हारी सब इच्छाएँ पूरी होंगी। मैं तुम्हें बारह वर्षतक अन्न देता रहूँगा, यह लो ताँबेका बर्तन। इस पात्रसे द्रौपदी जबतक अन्न बाँटती रहेगी और स्वयं भोजन नहीं कर लेगी, तबतक तुम्हारी रसोईमें अन्न, फल, मूल, शाक आदिकी कमी नहीं होगी। तेरह वर्ष बीतनेपर तुम्हें राज्य मिलेगा।' भगवान् सूर्य चले गये। धर्मराजने वह पात्र द्रौपदीको दे दिया। द्रौपदी प्रतिदिन रसोई बनाकर उसी पात्रसे बाँटती, अनेकों अतिथि-ब्राह्मण भोजन करते। जैसे राज्य रहनेपर धर्मराज अनेकों व्यक्तियोंके आश्रय थे, वैसे ही वनमें भी रहे। अनेकों ब्राह्मण, दीन, दु:खी उनके साथ-ही-साथ चलते, समय-समयपर उत्सव भी होता और अतिथि-ब्राह्मण निमन्त्रित भी किये जाते।

एक ओर धार्मिक लोग धर्मके प्रभावसे वनमें भी बड़ी उदारता और धार्मिकताके साथ जीवन व्यतीत कर रहे थे, दूसरी ओर दुष्ट कौरव अपनी दुष्टतासे चूकते नहीं थे। यहाँतक कि धृतराष्ट्रने विदुरकी कटु सम्मतियोंसे ऊबकर उन्हें अपने यहाँसे जानेको कह दिया और वे चले भी गये। परंतु फिर उन्होंने विदुरको आदमी भेजकर पाण्डवोंके पाससे बुलवा लिया। एक दिन कर्ण, शकुनि और दुर्योधनने यह सलाह की कि इस समय पाण्डव असहाय हैं, हमलोग अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर वनमें चलें और उन्हें मार डालें। इसके अनुसार उन लोगोंने यात्रा भी कर दी; परंतु भगवान् व्यासने आकर उन्हें रोक दिया और वे इस पापसे बच गये। महर्षि मैत्रेयने आकर दुर्योधनको बहुत कुछ समझाया कि तुम अपनी दुष्टता छोड़ो और पाण्डवोंको उनका हक दे दो। परंतु दुर्योधनने उनकी एक नहीं सुनी। मैत्रेय ऋषिने हाथमें जल लेकर शाप दे दिया कि 'भीमसेनकी गदासे तेरी जाँघ टूट जायगी और सारे कुरुकुलका नाश हो जायगा।'

भगवान् श्रीकृष्ण और धृष्टद्युम्न आदिके चले जानेपर द्रौपदीके साथ पाण्डव वनमें रहने लगे। वे कभी-कभी एकत्र होते और परस्पर नाना प्रकारकी बातें किया करते। एक दिन पाण्डवोंकी प्रियतमा,

सर्वांगसुन्दरी, परम पतिव्रता, बुद्धिमती द्रौपदीने कहा—'धर्मराज! दुष्टोंका हृदय भी कैसा होता है! हमलोगोंको मृगछाला पहनाकर वनमें भेजते समय दुर्योधनको क्या तनिक भी कष्ट नहीं हुआ? आपकी धार्मिकता और बड़े होनेका खयाल उसके मनमें तनिक भी नहीं आया? जब मैं देखती हूँ कि आप कुशासनपर सोये हुए हैं, तब मुझे आपकी रत्नजटित सुकोमल शय्याका स्मरण हो आता है और मेरा कलेजा फटने लगता है। आपके जिस शरीरमें चन्दनका अंगराग लगता था, आज मैं उसे धूलसे मलिन देख रही हूँ। क्या आपका शरीर वल्कल पहननेयोग्य है? भीमसेनके दोनों हाथ क्रोधित सर्पकी भाँति कौरवोंका नाश करनेके लिये लपलपा रहे हैं। अर्जुन आपकी इस दुरवस्थाको देखकर अपने दोनों बाहुओंसे सहस्त्रबाहुकी अपेक्षा भी अधिक वीरता दिखानेको तैयार हैं। ये नकुल और सहदेव आपके लिये अपने प्राणोंको हथेलीपर लिये फिरते हैं, सबसे बढ़कर श्रीकृष्ण आपके सहायक हैं। यह सब होनेपर भी आप क्षत्रियोचित वीरता क्यों नहीं प्रकट करते? क्या अपने भाइयोंके दुःखसे आपको दुःख नहीं होता? अपने और अपने भाइयोंके दुःखसे न सही, मेरे दुःखसे तो आपको प्रभावित होना ही चाहिये। मैं महाप्रतापी राजा द्रुपदकी कन्या हूँ, महात्मा पाण्डुकी पुत्रवधू हूँ, धृष्टद्युम्नकी बहिन हूँ और आप-सरीखे वीर पाण्डवोंकी पतिव्रता धर्मपत्नी हूँ। मुझे इस अवस्थामें देखकर क्या आपके हृदयमें आग नहीं भड़कती? क्षमाको छोड़िये, शौर्यको प्रकट कीजिये, दुष्टोंके नाशके लिये क्रोधित होना भी धर्म है।

'क्षमाका भी एक समय होता है और क्रोध प्रकट करनेका भी एक समय होता है। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि क्रोधके अवसरपर आप क्षमा प्रकट कर रहे हैं! दैत्यराज बलिके पूछनेपर भक्तराज प्रह्लादने बतलाया था कि केवल क्षमा करनेसे ही राजाका बहुत कुछ अनिष्ट हो सकता है। लोग उससे दबते नहीं, उसके सामने

झुकते नहीं। बहुत-से लोग उसे तुच्छ समझने लगते हैं और बहुत-से दोष अपनाकर उच्छृंखल व्यवहार करने लगते हैं। लोभी उसकी धन-सम्पत्ति ले लेना चाहते हैं, उसके कर्मचारी बिगड़ जाते हैं, सेवक उसकी आज्ञाका पालन नहीं करते, लोग उसकी स्त्रीका सतीत्व नष्ट करनेपर उतारू हो जाते हैं और स्त्री भी स्वच्छन्दचारिणी हो जाती है। इसलिये क्षमाके साथ-साथ दण्ड देना भी आवश्यक है। इसी प्रकार जो सर्वदा दण्ड ही देता है, क्षमा नहीं करता, वह कभी-कभी अन्याय कर बैठता है। वह अपने मित्रोंका भी विरोध करता है और सब लोगोंका अप्रिय बन जाता है। स्वजन उसका साथ छोड़ देते हैं, उपकारी उससे निराश हो जाते हैं, उदासीन भी शत्रु हो जाते हैं और राह चलते लोग भी उससे खीझने लगते हैं। अविचारित दण्डका यही परिणाम है कि अपमान, धनकी हानि, उलाहना, अनादर, संताप, द्वेष, मोह और वैरकी उत्पत्ति आदि अनर्थ प्राप्त होते हैं। इसलिये समयपर नरमी और समयपर गरमी दिखानी चाहिये।

'अपना उपकार करनेवालेसे कोई अपराध भी हो जाय तो क्षमा कर देना चाहिये। मूर्खताके कारण किसीसे अपराध हो जाय तो वह भी क्षमा करनेयोग्य है। कोई जान-बूझकर अपराध करे तो स्वीकार कर लेनेपर और पश्चात्ताप करनेपर उसे भी एक बार क्षमा कर देना चाहिये। जो अपराध भी करे और अपनेको निरपराध सिद्ध करनेके लिये दलील भी दे उसे दण्ड देना ही उचित है। बार-बार अपराध करनेवालेको क्षमा करना तो स्वयं अपराध है। कभी-कभी लोकनिन्दाके भयसे भी क्षमा करना पड़ता है; परंतु इन बातोंको देश, काल और अपनी क्षमताके साथ मिला लेना चाहिये। धर्मराज! मेरी समझसे कौरवोंको दण्ड देनेका यही उपयुक्त समय है। वे बार-बार आपकी बुराई कर रहे हैं, इसलिये उन्हें क्षमा नहीं करना चाहिये। अब आप अपना क्षत्रियत्व प्रकट करें, अपना तेज दिखायें और उन दुष्टोंको उनके कियेका दण्ड दें।'

युधिष्ठिरने द्रौपदीकी प्रशंसा करते हुए कहा—'द्रौपदी! तुम बड़ी बुद्धिमती हो, तुम्हारी युक्तियाँ बड़ी प्रबल हैं; परंतु मैं क्रोधको कभी आश्रय नहीं दे सकता। क्रोधसे मनुष्यका नाश हो जाता है, जो क्रोधके वेगको रोक सकता है, उसीका भला हो सकता है। क्रोधी मनुष्य गुरुओंका अपमान कर बैठता है, उसे वाच्य-अवाच्य और कार्य-अकार्यका ज्ञान नहीं रहता। वह इतना अंधा हो जाता है कि मारनेयोग्यकी पूजा और पूजा करने योग्यकी हत्या कर डालता है। बहुतोंने क्रोधके कारण आत्महत्या कर ली हैं। क्रोधहीन ही सुखी है। द्रौपदी! मुझे तो कभी क्रोध नहीं आता, क्रोध न करनेसे अपनी और दूसरोंकी भी रक्षा होती है। अपनेको जो पीड़ा पहुँचाता है, उसे भी बारम्बार क्षमा करना ही धर्म है। मिथ्याकी अपेक्षा सत्य, निर्दयताकी अपेक्षा दया और क्रोधकी अपेक्षा क्षमा उत्तम है। बिना कामके क्रोध हो ही नहीं सकता। कामी और क्रोधीमें दैवी सम्पत्तिके गुण आ ही नहीं सकते। संसारके सभी संत क्षमाका ही गुणगान करते हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और पितामह भीष्म भी क्षमाकी ही प्रशंसा करते हैं। भरतवंशके लिये यह बड़ा ही दारुण समय है। यदि इस समय मैं क्षमा नहीं करूँगा तो इस वंशका सत्यानाश हो जायगा। क्षमाने मेरा आश्रय लिया है, मैंने क्षमाको अपनाया है। क्षमा ही सनातन धर्म है; चाहे जैसी भी परिस्थिति आ जाय तो क्षमा ही करूँगा।'

द्रौपदीने कहा—'महाराज! जिस ईश्वरने और कर्मके फलोंने आपकी बुद्धिको विपरीत कर दिया है और राज्य पालनके बारेमें पूर्वपरम्परासे प्रचलित धर्मके सम्बन्धमें मिथ्या धारणा उत्पन्न कर दी है, उनको मैं प्रणाम करती हूँ। कर्म ही नित्य पदार्थ है, जो कर्म या उद्योग नहीं करते, लोकापवादसे डरते हैं, क्षमा, दया, सरलता आदिके नामपर अकर्मण्यताको प्रश्रय देते हैं; वे कभी उन्नति नहीं कर सकते। आप संसारके सभी प्रकारके सुखोंके अधिकारी हैं, फिर भी अपने वीर भाइयोंके साथ जो यह दुर्दशा भोग रहे हैं, इसका कारण केवल

आपकी उद्योगहीनता है। आप कभी धर्मसे विचलित नहीं हुए, आपने सर्वदा धर्मको अपने प्राणोंसे भी प्रिय समझा। सभी जानते हैं कि आपका राज्य और जीवन धर्मके लिये है, आप अपने भाइयोंको और मुझको भी छोड़ सकते हैं, परंतु धर्मको नहीं छोड़ सकते। मैं सुना करती थी कि धर्म अपने रक्षककी रक्षा करता है; परंतु आप तो धर्मकी रक्षा करते हैं, धर्म आपकी रक्षा नहीं करता। आपने सर्वदा धर्मका अनुगमन किया है, सदा सर्वस्व दान देनेके लिये तैयार रहे हैं। आज भी आपका समय धर्मपालनमें ही व्यतीत होता है। किंतु पासेके व्यसनने आपको विपत्तिमें डाल दिया। मैं आपको इस अवस्थामें देखकर बहुत ही उदास और व्यथित हो रही हूँ।'

'महाराज! मैंने भाग्यवादियोंकी बहुत-सी बातें सुनी हैं। वे कहते हैं कि जगत्के सभी प्राणी कठपुतलियाँ हैं और उन्हें नचानेवाला कोई दूसरा ही है। सब नथे हुए बैलोंकी भाँति अथवा डोरेमें बँधे हुए पक्षियोंकी भाँति दूसरेके अधीन हैं। ईश्वर ही सबसे भला या बुरा कर्म करवाता है, वही इन सब प्राणियोंको उत्पन्न और विनष्ट करता है। ये सब संसारके संयोग और वियोग उसके खिलवाड़ हैं। इससे तो ऐसा मालूम होता है कि जगत्का माता-पिता परमात्मा अपनी संतानके साथ न्याययुक्त व्यवहार नहीं करता। बड़े-बड़े धार्मिक, सच्चरित्र और शीलवान् कष्ट पा रहे हैं। नीच, अनार्य और अधर्मी बड़े सुखसे अपना जीवन बिता रहे हैं। दुर्योधनकी विशाल सम्पत्ति और आपकी विपत्ति देखकर मेरे मनमें स्वभावसे ही यह बात आ रही है।'

युधिष्ठिरने कहा—'प्रिये! तुम क्या कह रही हो। तुम्हारी-जैसी धर्मप्रिय देवीके मुँहसे ऐसी बात नहीं निकलनी चाहिये! तुम्हारे सुननेमें मीठे वचन नास्तिकताके पोषक हैं। मैं कर्मफल पानेकी इच्छासे कर्म नहीं करता। मैं दानके लिये दान करता हूँ, यज्ञके लिये यज्ञ करता हूँ और अपना कर्तव्य समझकर करता हूँ; फल हो या न हो, इसकी मुझे परवा नहीं! मैं धर्मको दुहना नहीं चाहता। मैं सुखके लिये

बिना कोई रह ही नहीं सकता। भाग्यवादी और जडवादी दोनों ही निन्दनीय हैं. जो परिश्रम और चेष्टा छोड़कर भाग्यके भरोसे बैठा रहता है. वह पानीमें पड़े हुए कच्चे घड़ेकी तरह नष्ट हो जाता है। सब कुछ कर्मका ही फल है। ये बड़े-बड़े नगर, भवन, उनका उपयोग और उनके सम्बन्धमें नये-नये आविष्कार कर्मसे ही होते हैं। तिलोंमें तेल, गायमें दूध और लकड़ीमें आग है, परंतु बिना निकाले उनसे कोई लाभ नहीं उठा सकता। भाग्य भी पूर्वसंचित कर्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कर्म कभी निष्फल नहीं होता। अकर्मण्यता दरिद्रताकी जननी है। बड़े-बड़े ऋषियोंने इस बातको स्पष्ट घोषित कर दिया है। हमारी यह दुर्दशा पौरुषका आश्रय न लेनेके कारण है। कर्मकी सफलतामें संदेह करके यदि आपलोग निश्चेष्ट बैठे रहें तो फिर हमें कभी राज्य नहीं मिल सकता। आशावान् दृढ़ और तत्पर पुरुष ही सारे संसारको अपने वशमें कर सकता है। अपनी शक्तिके अनुसार समझ-बूझकर उद्योग करना ही उत्तम है। पराक्रमका आश्रय लेकर साम, दान, दण्ड, भेदका यथावसर प्रयोग करना चाहिये। मैं असमर्थ हूँ, ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिये। यह तो आत्माका अपमान है। यदि सफलतामें विलम्ब हो तो अपने उद्योगमें ही त्रुटि देखनी चाहिये। मैंने अपने पिताकी गोदमें बैठकर विद्वान् और सदाचारी ब्राह्मणके मुँहसे बृहस्पतिकी पूरी नीति सुनी है। मैं आपसे सत्य कहती हूँ, अब हमलोगोंका इसीमें कल्याण है कि पौरुषके द्वारा शत्रुओंको परास्त करके पुनः अपनी सम्पत्ति प्राप्त की जाय।'

द्रौपदीकी बात सुनकर भीमसेनकी साँस लम्बी चलने लगी। वे क्रोधित होकर धर्मराजको उत्तेजित करने लगे कि अभी कौरवोंपर चढ़ाई कर दी जाय और राज्यका उद्धार कर लिया जाय; परंतु युधिष्ठिरने उन्हें बहुत समझाया और कहा कि 'जब हम बारह वर्षतक वनवास और एक वर्षतक अज्ञातवास करनेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं, तब किसी भी कारणसे वह प्रतिज्ञा तोड़ी नहीं जा सकती।'

इस प्रकार लोगोंमें बातचीत हो ही रही थी कि भगवान् व्यासदेव वहाँ पधार गये। स्वागत-सत्कारके बाद उन्होंने कहा कि 'मैं यह विद्या बतलाता हूँ, इसके द्वारा अर्जुन भगवान् शंकर और इन्द्रको प्रसन्न करके सिद्धि प्राप्त करे। तब तुमलोग कौरवोंको आसानीसे जीत सकोगे।' युधिष्ठिरने उनसे वह विद्या प्राप्त कर ली और फिर अर्जुनको उसका उपदेश किया। भगवान् वेदव्यासकी सम्मतिसे अर्जुनने वह अनुष्ठान किया। अनुष्ठान करनेके लिये यात्रा करते समय द्रौपदीने भगवान्से प्रार्थना की, मंगलकामना की और अर्जुनको सिद्धि-प्राप्तिके लिये उत्साहित किया। अर्जुन मन्त्रसिद्धिके लिये चले गये।

अर्जुनके वियोगसे पाण्डवोंको बड़ी व्यथा हुई। द्रौपदीके हृदयकी अवस्था तो अवर्णनीय हो गयी थी। ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे युधिष्ठिरने तीर्थयात्राका निश्चय किया, वे अनेकों तीर्थोंमें घूमते रहे। द्रौपदी और अनेकों ब्राह्मण इनके साथ-साथ थे। द्रौपदी अपने हाथोंसे परस्पर सबको खिलाती, सबके भोजन कर लेनेपर स्वयं भोजन करती। यात्रामें जिन-जिन महात्माओंसे उनकी भेंट हुई, उन्होंने जो-जो कथाएँ सुनीं और वे जिन-जिन तीर्थोंमें गये, उनका विस्तृत वर्णन महाभारतके वनपर्वमें पढ़ना चाहिये। द्रौपदी उन लोगोंके साथ पैदल ही चलती, उसे कभी इस प्रकार चलनेका अभ्यास नहीं था। कभी बड़े जोरकी आँधी चलती, कभी कड़ाकेकी गरमी पड़ती, मूसलाधार वर्षा होती और शरीरको ठिठुरानेवाला जाड़ा पड़ता। द्रौपदी मौन भावसे सब सहन करती और केवल सहन ही नहीं करती, अपनेको ऐसी अवस्थामें भी पतियोंकी सेवा करते देखकर अपने जीवनको सफल मानती।

एक बार जब वे लोग अर्जुनसे मिलनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित होकर गन्धमादन पर्वतकी ओर जा रहे थे, तब रास्तेमें बड़े उत्पातका सामना करना पड़ा। आँधी, पानी, पत्थरोंकी वर्षा, पेड़ोंका टूटना आदि

अनेकों प्रकारके उपद्रव होने लगे। अन्धकारके कारण साथके कई लोग बिछुड़ गये, परंतु भीमसेन धनुष-बाण लिये हुए द्रौपदीके साथ ही रहे। उत्पात बंद होनेपर जब सब लोग ऊपर चढ़ने लगे, तब द्रौपदी बिलकुल थक गयी। घबराहटके मारे उसका शरीर काँपने लगा, वह अपने शरीरको न सँभाल सकनेके कारण बैठ गयी। द्रौपदीसे बैठा भी नहीं रहा गया, वह जमीनपर लोट गयी। यह दशा देखकर नकुलसे नहीं रहा गया, वे दौड़कर सबसे पहले द्रौपदीके पास पहुँचे और उसे उठाकर उन्होंने धर्मराजसे कहा—'महाराज! पांचालराजकी कुमारी कमलनयनी द्रौपदी, जिसे आजतक कोई कष्ट नहीं सहना पड़ा, इस समय थक जानेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ी है। इसे आप धीरज दीजिये।'

युधिष्ठिर बहुत दुःखी हुए। वे सहदेवके साथ दौड़कर द्रौपदीके पास गये। उसके उतरे हुए चेहरेको देखकर बहुत ही उदास हुए। उसका सिर अपनी गोदमें रखकर वे विलाप करने लगे। वे कहने लगे—'जो द्रौपदी सुसज्जित भवनमें सुकोमल शय्यापर शयन करती थी, वह इस समय पृथ्वीपर पड़ी हुई है। मेरे कारण इस अनिन्द्य सुन्दरीका मुखमण्डल मलिन हो गया है, चरण शिथिल पड़ गये हैं। मैंने जुआ खेलकर बड़ा बुरा काम किया। क्या महाराज द्रुपदने यही सोचकर हमें अपनी प्यारी कन्या दी थी? क्या उनके मनमें कभी यह कल्पना रही होगी कि मेरी कन्या इस प्रकार वन-वनमें घूमेगी? परंतु दुःखकी बात है कि आज वही हो रहा है।' युधिष्ठिरका विलाप सुनकर धौम्य आदि ब्राह्मण उनके पास चले आये और उन्होंने मन्त्र पढ़कर आशीर्वाद देकर ढाढ़स बँधाया। धीरे-धीरे द्रौपदी होशमें आयी, स्वस्थ हुई। अब प्रश्न यह हुआ कि आगे कैसे चला जाय। भीमसेनने कहा कि मैं अकेला ही आपको, द्रौपदीको और नकुल-सहदेवको लादकर ले चलूँगा। यदि आप कहें तो मेरा पुत्र घटोत्कच बड़ा बलवान् है, उसे बुला दूँ। आप आज्ञा देंगे तो वह सबको

लादकर ले चलेगा। युधिष्ठिरने आज्ञा दे दी। भीमसेनके स्मरण करते ही घटोत्कच वहाँ आ गया।

घटोत्कचके आज्ञा माँगनेपर भीमने कहा—'बेटा! तुम्हारी माता द्रौपदी थक गयी है, चल नहीं सकती। तुम बलवान् हो और साथ ही तुममें इच्छानुसार चलनेकी शक्ति है; तुम उसे लादकर ले चलो। आकाशमार्गसे इस प्रकार धीमी चालसे चलो कि हमारा साथ न छूटे और इसे कष्ट भी न हो।' घटोत्कचने कहा—'पिताजी! मैं अकेला ही द्रौपदी, धौम्य, धर्मराज, नकुल और सहदेवको ले चल सकता हूँ। इस समय तो मेरे पास और भी बहुत-से आकाशचारी वीर राक्षस हैं, वे ब्राह्मणोंसहित आप सबको ले चलेंगे।' भीमने स्वीकार कर लिया। घटोत्कच द्रौपदीको और अन्यान्य राक्षस पाण्डवोंको अपने कंधोंपर लेकर आकाशमार्गसे चले। दूसरे राक्षसोंने ब्राह्मणोंको अपने कंधोंपर बैठा लिया। महातपस्वी लोमश अपने तपोबलके प्रभावसे सूर्यके समान सिद्धमार्गसे चलने लगे। रास्तेमें अनेकों वन-उपवन, पर्वत-शिखर, नदी-नाले आदि देखते हुए वे बदरिकाश्रम पहुँचे। पहाड़ोंमें अनेक विचित्र धातुएँ थीं। अनेकों रत्नोंकी खानें थीं। अनेकों जातिके पशु-पक्षी घूम रहे थे। नदियाँ बह रही थीं, वृक्ष फूले-फले हुए थे।

नर-नारायणके दर्शन करके उन लोगोंको बड़ा आनन्द मिला। वे वहाँ कई दिनोंतक सुखपूर्वक निवास करते रहे। एक दिन अचानक पूर्वोत्तरकोणकी हवाने वहाँ एक सूर्यके समान चमकता हुआ सहस्रदल कमल पहुँचा दिया। उस दिव्य गन्धयुक्त दर्शनीय पुष्पको देखकर और लेकर द्रौपदी बहुत प्रसन्न हुई। उसने भीमसेनको दिखाकर कहा कि 'यह पुष्प कितना सुगन्धित, कितना रमणीय, कितना बढ़िया है। इसने मेरा मन चुरा लिया है। मैं यह पुष्प धर्मराजको भेंट करूँगी। क्या तुम ऐसे और भी पुष्प ला सकते हो? तुम अवश्य ला सकते हो! जाओ न, ले आओ। मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।' द्रौपदी वह फूल

लेकर धर्मराजके पास चली गयी। भीमसेन मत्त मातंगकी भाँति बड़ी मस्तीसे अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर कमल-पुष्पके लिये रवाना हुए। रास्तेमें हनुमान्‌जीसे भेंट हुई। उन्होंने युद्धमें सहायता करनेका वचन दिया। बहुत-से दैत्य-दानवोंका संहार करके भीमसेन उस सौगन्धिक वनमें पहुँचे। जब द्रौपदीसे युधिष्ठिरको यह समाचार मालूम हुआ तब वे भी सबके साथ घटोत्कच आदिकी सहायतासे वहाँ जा पहुँचे। उस तालाबमें खूब जल-विहार किया और कुछ दिनोंतक वहीं रहे। इसके बाद पर्वतके अनेक स्थानोंपर विचरते रहे। जब अर्जुन स्वर्गसे लौट आये, तब उनसे मिलनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण भी आये।

कुशल-समाचारके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने द्रौपदीसे कहा—'देवि! अब तुम्हारे सौभाग्यके दिन आनेमें अधिक विलम्ब नहीं है। अर्जुन शस्त्रविद्या प्राप्त करके लौट आये हैं। तुम्हारे पुत्र द्वारकामें बड़ी लगनके साथ धनुर्वेदका अभ्यास कर रहे हैं। वे सदा सत्संगमें रहते हैं और सदाचारमें बड़े निपुण हो गये हैं। उन्हें तुम्हारे पिता और भाइयोंने कई बार बुलाया, राज्य देनेके लिये प्रलोभित भी किया, परंतु उन्हें अपने नाना या मामाके पास रहना अच्छा नहीं लगता। वे द्वारकाको छोड़कर स्वर्गमें भी नहीं जाना चाहते। युद्धविद्यासे उनका विशेष प्रेम है। जैसे आर्या कुन्ती या तुम उन्हें सच्चरित्रता सिखातीं, उनका लालन-पालन करतीं, वैसे ही द्वारकामें बहिन सुभद्रा उनकी देख-रेख करती हैं। प्रद्युम्न जैसे अपने पुत्रोंको शिक्षा देते हैं, वैसे ही अभिमन्यु और तुम्हारे पुत्रोंको भी देते हैं। तुम प्रसन्न रहो, कोई चिन्ता मत करो।' भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको आश्वासन दिया तथा बहुत प्रिय, मधुर और हितकारी वचनोंसे उन्हें समझाया। सब लोग वहीं रहने लगे, मार्कण्डेय ऋषिने बहुत दिनतक वहाँ रहकर नाना प्रकारके इतिहास सुनाये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके उपदेश दिये।

इस बार भगवान् श्रीकृष्णके साथ सत्यभामा भी आयी हुई थीं।

ऋषि, महर्षि, श्रीकृष्ण और पाण्डव एक आश्रममें बैठे बातचीत कर रहे थे और दूसरे स्थानपर सत्यभामा तथा द्रौपदी बैठकर आपसमें कुरुवंश और यदुवंशके सम्बन्धकी विचित्र बातें कर रही थीं। उसी सिलसिलेमें सत्यभामाने पूछा—'सखी! तुम अपने वीर पतियोंको किस व्यवहारसे संतुष्ट रखती हो? वे तुमपर कभी क्रोध नहीं करते, तुम्हारा मुँह ताका करते हैं। उनमें कभी ईर्ष्याका भाव नहीं देखा जाता। वे सब-के-सब तुम्हारे वशमें रहते हैं। क्या इसके लिये तुमने कोई व्रत, तप या जप किया है? किसी मन्त्र, दवा, अंजन या जड़ी-बूटी आदिका सहारा लिया है? तुम मुझे भी कोई ऐसा ही उपाय बतलाओ कि जिससे मैं अपने पतिको वशमें कर सकूँ।' भाग्यशालिनी द्रौपदीने कहा—'बहिन! तुम यह क्या पूछ रही हो? क्या कभी पतिव्रता स्त्री अपने पतिको वशमें करना चाहती है? पतिव्रता तो सर्वदा अपने पतिके वशमें रहती है और रहना चाहती है। यह तो स्त्रियोंके ओछेपनका सूचक है कि वे अपने पतिको वशमें करना चाहें। तुम बुद्धिमती हो, श्रीकृष्णकी प्यारी हो, तुम्हारे मुँहसे ऐसा प्रश्न शोभा नहीं देता। देखो, बहिन! तुम्हें मैं एक बड़े रहस्यकी बात बताती हूँ। जब पतिको यह मालूम होता है कि मेरी स्त्री मन्त्र-यन्त्रके द्वारा मुझे वशमें करना चाहती है, तब वह उससे घबराने लगता है और जैसे लोग घरमें साँपके रहनेसे चिन्तित रहते हैं, वैसे ही चिन्तित हो जाता है। जब पति चिन्तित हो गया, तब घरवालोंको शान्ति और सुख कैसे मिल सकता है। इसलिये मन्त्र-यन्त्रसे पतिको वशमें करनेकी चेष्टा बहुत ही बुरी है। उससे पति तो वशमें होता नहीं, बुराई पैदा हो जाती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पतिको वशमें करनेके लिये भूलसे ऐसी दवा खिला दी जाती है, जिससे पति सर्वदाके लिये बीमार हो जाता है या मर जाता है। ऐसी स्त्रियोंसे धूर्त शत्रु भी लाभ उठाते हैं। खानेके लिये या शरीरमें लगानेके लिये ऐसे चूर्ण दे देते हैं, जिससे पति पीड़ित, कोढ़ी, असमयमें ही वृद्ध, नपुंसक, पागल, अंधे या

बहरेतक हो जाते हैं। इसलिये पतिको वशमें करनेके लिये ऐसी चेष्टा कदापि नहीं करनी चाहिये।

'बहिन! पतिको प्रसन्न रखना और उनके वशमें हो जाना ही उन्हें अपने वशमें करनेका सच्चा उपाय है। मैं अहंकार, कामवासना, क्रोध आदि दुष्ट भावोंसे बचकर पवित्रताके साथ पाण्डवोंकी और उनकी अन्य स्त्रियोंकी सेवा करती हूँ। मेरे मनमें कभी ईर्ष्या नहीं होती, मनको सदा उनके अनुकूल रखती हूँ और वाणीसे कभी अप्रिय वचन नहीं बोलती। शरीरसे सेवा करती हूँ, उनका मन रखती हूँ और कभी उनपर संदेह नहीं करती। बुरी जगहपर नहीं बैठती, खराब चाल नहीं चलती, दुराचारिणी स्त्रियोंसे कभी बात नहीं करती। कभी ऐसी दृष्टिसे नहीं देखती, जिससे निन्दित विचार प्रकट होते हों। मेरे पति सर्वगुणसम्पन्न हैं। मैं किसीके रूप, गुण, अवस्था, सज-धज आदिसे आकर्षित नहीं होती। उनके स्नानके बाद स्नान करती हूँ, उनके भोजनके बाद भोजन करती हूँ, उनके सो जानेपर सोती हूँ। उनकी तो बात ही क्या, जबतक घरके दूसरे लोग या सेवक स्नान, भोजन या शयन नहीं कर लेते, तबतक मैं भी नहीं करती। मेरे पति कहीं बाहरसे आते हैं, तब मैं आगेसे उठकर उनका स्वागत करती हूँ। भीतर ले आती हूँ, आसनपर बैठाती हूँ और अपने हाथों पानी लाकर उनके हाथ, पैर, मुँह धुलाती हूँ। घर और घरकी सब सामग्रियोंको साफ-सुथरा रखती हूँ, स्वच्छता और पवित्रताके साथ भोजन बनाकर ठीक समयपर खिलाती हूँ। भंडारमें ठीक-ठिकानेसे अन्न रखती हूँ। उनकी रुचिके अनुसार ही काम करती हूँ। आपसके विनोदके अतिरिक्त अन्य समय हँसती नहीं हूँ। द्वारपर खड़ी नहीं रहती। घरसे मिले हुए बागमें भी बहुत देरतक नहीं ठहरती। न बहुत हँसती हूँ, न खीझती हूँ। झनककर किसीसे कड़वी बात नहीं कहती। अवसर आनेपर बचा जाती हूँ। पतिसे अलग रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। पतिके परदेश जानेपर मैं फूल, माला, सुगन्ध आदिसे अपनेको सजाती

नहीं। मेरे पति जिस वस्तुको पसंद नहीं करते उसे मैं भी पसंद नहीं करती। उनकी बात मानती हूँ; उनका जैसे हित हो, वे जैसे प्रसन्न हों, वही मेरा व्रत है। जब मैं उनके पास जाती हूँ, तब पवित्र होकर सुन्दर वस्त्र, आभूषण, सुगन्धित वस्तु धारण करके ही जाती हूँ।

'मेरी सासने अपने कुटुम्बियोंके साथ जैसा व्यवहार करना मुझे सिखाया है, मैं वैसा ही करती हूँ। भिक्षा देना, देव-पूजा करना, श्राद्ध और पर्वके दिन अच्छे-अच्छे भोजन बनाना, माननीय पुरुषोंकी पूजा और सत्कार करना तथा दूसरे जो मेरे कर्तव्य मुझे ज्ञात हैं, उनका दिन-रात सावधानीसे पालन किया करती हूँ। विनयके भावको कभी नहीं छोड़ती। पति ही स्त्रियोंका देवता और एकमात्र गति है; भला कौन पतिव्रता अपने पतिका अप्रिय करना चाहेगी। मैं उन्हें हीन दृष्टिसे नहीं देखती। उनसे अच्छा भोजन नहीं करती। उनसे बढ़-चढ़कर कपड़े और गहने नहीं पहनती। अपनी सासकी निन्दा कभी नहीं करती, उनकी सेवा करती हूँ। जो काम करती हूँ, बड़ी लगनसे करती हूँ। जिसको वशमें करना हो, बिना शर्तके उसके वशमें हो जाना ही उसे वशमें करनेका सच्चा उपाय है। इतना वशमें हो जाना चाहिये कि वशमें करनेकी याद ही न रहे।'

'बहिन! आर्या कुन्तीको मैं अपने हाथसे परोसकर भोजन कराती हूँ। उनकी सब तरहकी सेवा स्वयं करती हूँ, उनसे बढ़कर न भोजन करती और न कपड़े या गहने पहनती। कभी ऐसी बात नहीं कहती, जो उन्हें बुरी लगे। पहले महाराज युधिष्ठिरके यहाँ सोनेके थालोंमें आठ हजार ब्राह्मण प्रतिदिन भोजन करते थे। अट्ठासी हजार स्नातक गृहस्थ ब्राह्मणोंको अन्न-वस्त्र दिया जाता था। दस हजार संन्यासियोंको भोजन दिया जाता था। मैं बलिवैश्वदेवके बाद इन सबको भोजन कराती थी और यथायोग्य पूजा करती थी। घरमें लाखों दासियाँ थीं। मुझे उनके नाम, रूप, खाने-पहननेका हाल सब कुछ मालूम था। कब किसने क्या काम किया, किसका क्या काम बँधा हुआ है, यह सब

मैं जानती थी। लाखों हाथी-घोड़े थे; उनकी गिनती, उनका प्रबन्ध मैं ही करती थी। सारे महलका, सब नौकरोंका, समस्त परिवारका, गाय, भेड़ आदि पशुओंका, उनके चरानेवाले रखवालोंका क्या प्रबन्ध हुआ है, यह मैं देखती रहती थी। राज्यकी आमदनी और खर्चका कुल हिसाब मैं जानती थी और उसकी जाँच-पड़ताल भी करती थी। मैं दिन-रात अधिक-से-अधिक परिश्रम करके इतने कामोंका बोझ सँभाले रहती थी कि जिनका भार साधारण पुरुष नहीं सँभाल सकते। पाण्डवोंका मुझपर इतना विश्वास था कि वे बस, दो ही काम करते थे— प्रजाकी रक्षा और दान। उनके खजानेमें अथाह धन था। मैं दिनको दिन नहीं समझती थी, रातको रात नहीं समझती थी। भूख और प्यासकी परवा नहीं करती थी। मुझे अपने पतियोंकी सेवा करनेमें इतना आनन्द आता कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकती। उद्वेग तो कभी मुझे हुआ ही नहीं। मैं हमेशा पतियोंके उठनेके पहले उठ जाती और सोनेके बाद सोती। मैंने पतियोंके साथ ऐसा ही व्यवहार किया है। मेरे मनमें उन्हें वशमें करनेकी इच्छा कभी नहीं हुई। मैं उनके वशमें रहना चाहती हूँ। वे मुझसे प्रसन्न हैं, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है। इसीमें मैं अपने जीवनकी सार्थकता समझती हूँ।'

सत्यभामाने कहा—'बहिन! मेरे मनमें मन्त्र-यन्त्र करनेकी कोई बात नहीं थी। मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण मुझसे यों ही बड़ा प्रेम करते हैं। तुम इसके लिये दुःख मत करो। मैं तुम्हारी सखी हूँ, इसलिये विनोदके रूपमें मैंने वह बात कही है। मैं तुम्हारे दुःखका कारण बनी, इसके लिये मुझे क्षमा करो।' द्रौपदीने कहा—'बहिन! सुनो, मैं तुम्हें पतिको वशमें करनेका सच्चा उपाय बताती हूँ। यह उपाय सर्वथा निर्दोष है। यदि तुम इसका आचरण कर सकोगी तो अपने पतिको सौतोंसे छीन सकोगी। स्त्रीके लिये पतिके समान कोई देवता नहीं है। पतिकी प्रसन्नतासे स्त्रीके सब मनोरथ पूरे होते हैं। पतिके क्रोधसे

धर्माचरण नहीं करता। बल्कि ऐसा करनेवालेको तो मैं निम्न कोटिका समझता हूँ। मैं एक बार तुमसे फिर कहता हूँ कि धर्मपर कभी संदेह मत करना। धर्मके प्रभावसे क्या नहीं हो सकता? व्यास, वसिष्ठ, मैत्रेय, नारद, लोमश, शुकदेव, मार्कण्डेय आदिने धर्मके बलसे क्या नहीं प्राप्त किया? इनके सुखकी तुलनामें किस अधर्मीका सुख रखा जा सकता है? तुम किसीके पास विशेष सम्पत्ति देखकर उसके सुखी होनेकी कल्पना कैसे कर लेती हो? वह अपने पापोंकी आगमें जलता रहता है। वह सम्पत्ति उसके उद्वेगका ही कारण होती है। केवल बाह्य परिस्थितिके आधारपर धर्मको भला-बुरा कहना तुम्हारी-जैसी देवीका काम नहीं है। यदि धर्मात्माओंका धर्मपालन निष्फल होता तो सारे संसारमें आज अँधेरा-ही-अँधेरा होता। धर्म करनेसे ही तुम्हारा भाई धृष्टद्युम्न पैदा हुआ था। धर्मसे ही तुम्हारी उत्पत्ति हुई है। तुम धर्मपर विश्वास करो, श्रद्धा करो! भगवान्‌को नमस्कार करो, उन्हें माननेका यत्न करो। तुम्हारी बुद्धिमें ऐसी बात फिर कभी न आये।'

द्रौपदीने कहा—'धर्मराज! आप धर्मके ज्ञाता हैं, आप मूर्तिमान् धर्म हैं; आप ऐसी बात कह सकते हैं। मैं दुःखकी मारी हुई हूँ। अपने देवताके समान पतियोंको ऐसी अवस्थामें देखकर मैं विह्वल हो गयी हूँ! ईश्वर और धर्मपर आन्तरिक श्रद्धा होनेपर भी मेरे मुँहसे ऐसे शब्द निकल गये। मेरा उद्देश्य ईश्वर या धर्मकी निन्दा करना नहीं है। अभी मेरा हृदय शान्त नहीं हुआ है। यदि अपने मनकी सभी बातें मैं बाहर न निकाल दूँ तो मेरा कलेजा फट जायगा। सुनिये, मेरी बात और भी ध्यानसे सुनिये।'

'संसारमें अबतक जितने बुद्धिमान् हुए हैं, सबने कर्म किया है। पशु भी माताका दूध पीते हैं, छाँहमें जाकर बैठते हैं, कर्मके द्वारा ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। प्रकृतिमें सर्वत्र क्रिया हो रही है। कर्मके रहस्यको जाननेवाला दुर्लभ है; यदि रक्षा या बढ़ानेकी क्रिया न की जाय तो सुमेरुके बराबर सम्पत्ति भी नष्ट हो जायगी। कर्मके

उसकी सब कामनाएँ निष्फल हो जाती हैं। पतिके प्रसादसे ही स्त्रियोंको लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक आनन्द प्राप्त होता है। श्रीकृष्णकी सेवा तुम इतने निष्कपट भावसे क्लेश सहकर करो कि वे केवल तुम्हींको चाहने लगें। वे जान जायँ कि तुम उन्हें सच्चे हृदयसे प्रेम करती हो। जब वे दरवाजेपर आयें, तब तुम उनका स्वागत करनेके लिये आँगनमें खड़ी हो जाया करो। भीतर आनेपर उन्हें सुन्दर आसन बिछाकर बैठाओ और अपने हाथसे पैर धोओ। वे दासीसे कोई काम करनेको कहें तो तुम स्वयं कर दो। यदि श्रीकृष्ण तुमसे कोई बात कहें और वह छिपानेके योग्य न हो तो भी तुम उसे दूसरेसे मत कहो; क्योंकि जब वह बात दूसरेके द्वारा उनके कानमें पहुँचेगी, तब वे सोच सकते हैं कि मेरी स्त्री किसी बातको गुप्त नहीं रख सकती। जो तुम्हारे पतिके मित्र हों, हितचिन्तक हों, उन्हें अच्छी-अच्छी चीजें खिलाओ, उनका सत्कार करो। उनके विरोधियोंको अपने पास मत फटकने दो। पर-पुरुषके आगे तुम्हारी मस्ती न प्रकट हो। पुरुषोंके आगे न बहुत बोलो और न तो अपने हृदयके भाव ही प्रकट होने दो। लज्जा और संकोचके साथ रहो। जो तुम्हारे पुत्र हैं—प्रद्युम्न और साम्ब आदि, उनके साथ भी एकान्तमें मत बैठो। क्रोध करनेवाली, शराब पीनेवाली, अधिक खानेवाली, कर्कशा, चोर, दुष्टा और चंचल स्त्रियोंका संग कभी मत करो। अच्छे वंशकी, पापसे डरनेवाली पतिव्रता स्त्रियोंसे मित्रता करो; उनके पास बैठो-उठो। अपने पति जैसे प्रसन्न हों, वैसी चेष्टा करो। स्त्रियोंके लिये यही सच्चा उपदेश है। जो स्त्री इसका अनुकरण करती है, वह सब प्रकारके सुख-सौभाग्यकी अधिकारिणी होती है।'

इसी प्रकार समय-समयपर दोनोंमें बातें होती रहीं। भगवान् श्रीकृष्णने बहुत दिनोंतक रहनेके बाद वहाँसे प्रस्थान करनेका विचार किया। सत्यभामाने द्रौपदीको बहुत कुछ आश्वासन दिया और बतलाया कि अब वे दिन दूर नहीं हैं जब कि तुम्हारे सारे शत्रु मारे

जायँगे। उसके पुत्रोंका कुशल-समाचार भी बताया और कहा कि वे शीघ्र ही सारे पृथिवीके वीरोंमें पूजनीय होंगे। सबको समझा-बुझाकर सत्यभामा और श्रीकृष्ण वहाँसे रवाना हुए।

(९)

सज्जन पुरुषोंमें यह स्वाभाविक गुण होता है कि यदि दूसरा कोई उनका अनिष्ट करना चाहे तो वे यथाशक्ति अनिष्टसे अपनेको बचानेकी चेष्टा करते हैं; परंतु अनिष्ट करनेवालेका अनिष्ट नहीं करना चाहते। वे स्वभावसे ही सबका हित चाहते हैं और हित चाहनेमें यह भेदभाव नहीं रखते कि कौन मेरा शत्रु और कौन मेरा मित्र है। वे दु:खीको देखकर दयार्द्र हो जाते हैं, अनिष्ट करनेवालेको देखकर उसके अंदर सद्बुद्धिका संचार करनेके लिये तड़पने लगते हैं और पुण्यात्माको देखकर उसके पुण्यकी अभिवृद्धिके लिये सचेष्ट हो जाते हैं। उनके जीवनका यही नियम है। वे जब घोर विपत्तिमें पड़ जाते हैं, उनका कोई सहारा नहीं रहता, तब वे भगवान् श्रीकृष्णको पुकारते हैं और श्रीकृष्ण दौड़कर उनकी रक्षा करते हैं। इस विषयमें द्रौपदीका बड़ा अनुभव था। उसने अपने जीवनमें अनिवार्य विपत्ति उपस्थित होनेपर भगवान् श्रीकृष्णको समय-समयपर पुकारा था और श्रीकृष्ण सब काम छोड़कर उसकी रक्षाके लिये दौड़े आये थे।

पाण्डव वनवासी हो गये, यद्यपि वे अपनी कार्य-सिद्धिमें लगे हुए थे। किसीके आश्रित नहीं थे, बहुतोंके आश्रय थे। उनमें दैन्यका संचार नहीं हुआ था; तथापि कौरव यही समझते थे कि 'पाण्डव दीन हो गये, दरिद्र हो गये, असहाय हो गये। हमारे पास महान् ऐश्वर्य है। अब वे हमारा मुकाबला क्या कर सकते हैं?' इसी समझसे उनके मनमें यह दुर्बुद्धि आयी कि चलो हमलोग वनमें चलें और अपने ऐश्वर्यका प्रदर्शन करके पाण्डवोंको कुढ़ावें; उनका अनादर करें। वे सज-धजकर हस्तिनापुरसे वनके लिये रवाना हुए।

गन्धर्वराज चित्रसेनसे अर्जुनकी बड़ी मित्रता थी। जब उन्हें कौरवोंका

यह दुर्विचार मालूम हुआ कि ये मेरे मित्र अर्जुन और उनके भाइयोंको चिढ़ानेके लिये जा रहे हैं, तब उन्होंने ऐसा निमित्त उपस्थित कर दिया कि गन्धर्वोंसे कौरवोंका युद्ध हो गया। उस युद्धमें कौरवोंकी बहुत-सी सेना मारी गयी, बहुत-से वीर बेहोश हो गये। औरोंकी तो बात ही क्या, वीरवर कर्ण भी अपना रथ नष्ट हो जानेपर विकर्णके रथपर सवार होकर भाग गये। दुर्योधन पकड़ लिया गया और गन्धर्व उसे लेकर अपने लोकको चलते बने। सेनाके जो कुछ सामान्य सेवक अवशेष रह गये थे; उन्होंने जाकर पाण्डवोंसे प्रार्थना की कि 'राजा दुर्योधनको गन्धर्व पकड़े लिये जा रहे हैं, आपलोग उनकी रक्षा करें।' युधिष्ठिरने सोच-विचारकर भीम, अर्जुन आदि अपने छोटे भाइयोंको आज्ञा दी कि 'देखो भैया! यों तो जब हमारा कौरवोंसे विरोध हो, तब हम पाँच भाई और कौरव सौ भाई हैं; परंतु जब कौरवोंका और किसीसे विरोध होता है, तब हम सब मिलकर एक सौ पाँच भाई हैं। हम पाँचोंके रहते कोई कौरवोंका अपमान करे, यह असह्य है! तुमलोग अभी जाओ और सुलहसे अथवा युद्धसे उनको छुड़ा लाओ।' पाण्डवोंने अपने बड़े भाई युधिष्ठिरकी आज्ञा शिरोधार्य की।

पहले गन्धर्वोंसे अर्जुनका घमासान युद्ध हुआ। जब यह बात गन्धर्वराज चित्रसेनको मालूम हुई, तब वह आया और अर्जुनसे उसने भी युद्ध किया। जब चित्रसेन बहुत पीड़ित हो गये, तब उन्होंने अपनेको अर्जुनके सामने प्रकट किया और दोनोंमें कुशल-प्रश्न हुआ। चित्रसेनने अर्जुनसे कहा—'भाई अर्जुन! दुर्योधन और कर्णका दुष्ट विचार देवराज इन्द्रको स्वर्गमें ही मालूम हो गया था। वे सब अपना ऐश्वर्य दिखाकर तुम्हें कुढ़ानेके लिये, तुम्हारी दुर्दशाका स्मरण दिलानेके लिये और यशस्विनी द्रौपदीकी हँसी करनेके लिये यहाँ आये थे। देवराज इन्द्रकी आज्ञाके अनुसार ही हमलोगोंने दुर्योधनको पकड़ा था। अब तुम जैसा कहो, हम वैसा करनेको तैयार हैं।' अर्जुन दुर्योधन और गन्धर्वोंको साथ लेकर युधिष्ठिरके पास आये। युधिष्ठिरने समझा-बुझाकर गन्धर्वोंको विदा कर दिया और दुर्योधनको यह कहकर लौटा दिया कि 'मेरे प्यारे

भाई सुयोधन! बिना सोचे-विचारे कोई साहसका काम नहीं करना चाहिये। यह जो दुर्घटना घट गयी, इसके लिये किसी प्रकारका खेद मत करना; ऐसी ही होनी थी। अब तुम अपने भाइयोंके साथ अपनी राजधानीमें जाओ और वहाँ सुख भोगो।' दुर्योधन वहाँसे लौट गया।

दुर्योधनको पहले तो बड़ा पश्चात्ताप हुआ, परंतु पीछे उसकी बुद्धि बदल गयी। वह धर्मात्मा पाण्डवोंको और भी कष्ट पहुँचानेकी चेष्टा करने लगा। एक दिन यशस्वी, तपस्वी और तेजस्वी ऋषि दुर्वासा घूमते-घामते दस हजार शिष्योंके साथ दुर्योधनके अतिथि हुए। दुर्योधनने बड़ी विनयसे उनका स्वागत-सत्कार किया, वे कई दिनोंतक दुर्योधनके यहाँ रहे। दुर्योधन बड़ी तत्परतासे दिन-रात उनकी सेवामें लगा रहा। महर्षि दुर्वासाने कई प्रकारसे दुर्योधनकी परीक्षा भी ली; परंतु वह उनकी परीक्षामें उत्तीर्ण होता गया। कभी भोजन तैयार कराकर वे भोजन नहीं करते थे। कभी भोजनके लिये मना करके चले जाते थे और भोजनके समय दस हजार शिष्योंके साथ आकर पंक्तिमें बैठ जाते थे, परंतु दुर्योधनकी ओरसे किसी प्रकारकी असावधानी नहीं हुई, दुर्वासा बहुत ही प्रसन्न हुए।

दुर्वासाने दुर्योधनसे कहा—'बेटा! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वरदान माँग सकते हो। मेरे प्रसन्न होनेपर संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है!' दुर्योधनको बड़ी प्रसन्नता हुई। मरकर जीवित होनेपर जितना हर्ष किसी साधारण मनुष्यको हो सकता है, उससे भी अधिक हर्ष दुर्योधनको हुआ। दुर्योधनने कुटिल शकुनि और कर्णसे पहले ही सलाह कर ली थी कि दुर्वासासे क्या वर माँगना होगा। दुर्योधनने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! हमारे वंशमें महाराज युधिष्ठिर ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं। उनके गुण, सच्चरित्रता और शील-स्वभावकी महिमा सारे संसारमें प्रख्यात है। वे बड़े धर्मात्मा हैं और इस समय अपनी धर्मपत्नी द्रौपदी तथा छोटे भाइयोंके साथ वनमें निवास कर रहे हैं। मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि जैसे आप शिष्योंके साथ मेरे यहाँ पधारकर अतिथि हुए हैं, वैसे ही

उनके यहाँ भी हों। यदि आप मुझपर विशेष कृपा करना चाहते हैं, तो ऐसे समयमें जाकर उनके अतिथि होइये, जब यशस्विनी द्रौपदी ब्राह्मणों और पतियोंको खिला-पिलाकर तथा स्वयं भी खा-पीकर विश्राम कर रही हो।' दुर्वासाने दुर्योधनकी प्रार्थना स्वीकार की और वे वहाँसे विदा हुए। आज कौरवोंमें बड़ी प्रसन्नता है। वे सोच रहे हैं कि दुर्वासाको भोजन न करा सकनेके कारण पाण्डवलोग अवश्य ही दुर्वासाकी क्रोधाग्निसे भस्म हो जायँगे।

भोले दुर्वासाजी दुर्योधनकी प्रार्थनाके अनुसार ठीक वैसे ही समयपर पाण्डवोंके अतिथि हुए। पाण्डवोंने आसनपर बैठाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की और हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'ब्रह्मन्! स्नान-संध्या आदि नित्यकर्मोंको समाप्त करके आइये और भोजन कीजिये।' दुर्वासाके आनेका उद्देश्य ही यही था। उनके मनमें यह बात नहीं आयी कि वनवासी युधिष्ठिर इस समय मुझे और मेरे दस हजार शिष्योंको कहाँसे भोजन करायेंगे। उन्होंने स्वीकार कर लिया और वे शिष्योंके साथ नदीतटपर जाकर गोता लगानेके बाद परमात्माका ध्यान करने लगे।

द्रौपदीके लिये यह समय बड़ी विपत्तिका था। वह दुर्वासाके स्वभावसे परिचित थी। वह जानती थी कि यदि इस समय दुर्वासाको भोजन नहीं मिलेगा तो वे शाप देकर पाण्डवोंको नष्ट कर देंगे। बहुत सोचने-विचारनेपर भी उसे कोई उपाय नहीं सूझा। वह घोर चिन्तामें पड़कर अशरण-शरण, अनाथ-नाथ, दीनबन्धु भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गयी और चारा ही क्या था—और सहारा ही किसका था। ऐसे अवसरपर श्रीकृष्णके अतिरिक्त और सहायता कर ही कौन सकता है। उसका शरीर जड़-सा हो गया, उसके हाथोंकी बरबस अंजलि बँध गयी; आँखोंसे आँसूकी धारा फूट निकली। वह मन-ही-मन कहने लगी—'श्रीकृष्ण! मेरे प्यारे श्रीकृष्ण! तुम्हारी बाँहें बड़ी लम्बी हैं, तुम देवकीनन्दन होनेपर भी अच्युत हो, तुम वसुदेवपुत्र होनेपर भी जगदीश्वर हो। जिसने तुम्हें प्रणाम किया, उसका घोर संकट तुमने टाल दिया। तुम्हीं विश्वके विधाता

हो, तुम्हीं विश्वके संहारकर्ता हो और तुम्हीं स्वयं विश्व हो। मेरे प्रभु! मेरे स्वामी! मेरे सर्वस्व! तुम्हीं मेरे रक्षक हो, तुम्हीं सबके रक्षक हो, वास्तवमें तुम्हीं सबसे परे पुरुषोत्तम हो। तुम्हारी ही शक्तिसे चित्तकी वृत्तियोंमें चेतनाका संचार होता है। तुम्हारी ही चेतनासे चित्तवृत्तियाँ ज्ञानके संचयमें समर्थ होती हैं। मैं हृदयसे तुम्हें प्रणाम करती हूँ। तुम सर्वश्रेष्ठ हो, तुम्हीं सबको वर देनेवाले हो, तुम अनन्त हो। जिन्हें किसीका सहारा नहीं है, तुम उनका सहारा हो। प्राण, इन्द्रिय और मनकी वृत्तियाँ तुमतक पहुँचनेमें असमर्थ हैं। हे सबके स्वामी! हे सबसे बढ़कर स्वामी! मैं तुम्हारी शरणमें हूँ। शरणागतवत्सल श्रीकृष्ण! कृपा करके मेरी रक्षा करो। नीलकमलके समान साँवले शरीरवाले, कमलकोषके समान लाल नेत्रवाले, पीताम्बर और कौस्तुभमणि धारण करनेवाले श्रीकृष्ण! सभी प्राणी तुमसे उत्पन्न होकर तुम्हींमें विलीन हो जाते हैं। तुम्हीं एकमात्र सबकी परम गति हो। तुम परमसे भी परम ज्योति, विश्वात्मा और सर्वव्यापी हो। विद्वानोंने तुम्हें ही इस जगत्का परम बीज और सब ऐश्वर्योंकी खान कहा है। देवेश! तुम हमारे स्वामी हो, इसलिये हम किसी भी आपत्तिसे नहीं डरते। स्वामिन्! कौरवोंकी सभामें जैसे तुमने दुःशासनसे मेरी रक्षा की थी; वैसे ही इस महासंकटसे भी मुझे बचाओ! मैं तुम्हारी शरणमें हूँ।'*

---

* कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यय॥
वासुदेव जगन्नाथ प्रणतार्तिविनाशन।
विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्तः प्रभोऽव्यय॥
प्रपन्नपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर।
आकूतीनां च चित्तीनां प्रवर्तक नतास्मि ते॥
वरेण्य वरदानन्त अगतीनां गतिर्भव।
पुराणपुरुष प्राणमनोवृत्त्याद्यगोचर॥
सर्वाध्यक्ष पराध्यक्ष त्वामहं शरणं गता।
पाहि मां कृपया देव शरणागतवत्सल॥
नीलोत्पलदलश्याम पद्मगर्भारुणेक्षण।
पीताम्बरपरीधान लसत्कौस्तुभभूषण॥
त्वमादिरन्तो भूतानां त्वमेव च परायणम्।
परात् परतरं ज्योतिर्विश्वात्मा सर्वतोमुखः॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहाँ नहीं हैं? उनसे क्या छिपा है? कोई सच्ची प्रार्थना करे और वे वहाँ उपस्थित न हो जायँ, यह असम्भव है। द्रौपदीकी प्रार्थना द्वारकामें पहुँची, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण शय्यापर लेटे हुए थे, पास ही रुक्मिणी थीं; उन्होंने अपनी नींद छोड़ दी। रुक्मिणीसे कहा भी नहीं, वे बात-की-बातमें द्रौपदीके पास पहुँच गये। उन्हें देखते ही द्रौपदी आनन्दातिरेकसे पुलकित हो उठी और प्रणाम करके दुर्वासाके आनेका सब हाल कह सुनाया। श्रीकृष्णने कहा—'पांचाली! मैं द्वारकासे यहाँ आते-आते थक गया हूँ, मुझे बड़े जोरसे भूख लगी है। पहले शीघ्र मुझे भोजन कराओ, पीछे देशभरकी बातें सुनाना।' श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर द्रौपदी बहुत ही लज्जित हुई। उसने कहा—'प्रभो! जबतक मैं भोजन नहीं करती, तभीतक सूर्यभगवान्‌के दिये हुए पात्रमें अन्न रहता है, फिर कुछ नहीं रहता। इस समय मैं भोजन कर चुकी हूँ, अब उसमें कुछ नहीं है।' श्रीकृष्णने कहा—'द्रौपदी! मुझे भूख लग रही है और तुम दिल्लगी कर रही हो। थके-माँदेके साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये। शीघ्र जाओ, वह पात्र मेरे पास ले आओ; विलम्ब न करना, भला!' श्रीकृष्णका आग्रह देखकर द्रौपदी वह पात्र उठा लायी। उसके एक किनारेपर सागका एक टुकड़ा लगा हुआ था। भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं देखकर उसे उठा लिया और उसे खाकर कहा—

'अनेन यज्ञभुग् विश्वात्मा भगवान् प्रीयताम्।'

'अर्थात् इस अन्नसे यज्ञाधिपति देवाधिदेव विश्वात्मा भगवान् प्रसन्न और तृप्त हों।' यों कहकर भगवान् श्रीकृष्णने सहदेवसे

त्वामेवाहुः परं बीजं निधानं सर्वसम्पदाम्।
त्वया नाथेन देवेश सर्वापद्भ्यो भयं न हि॥
दुःशासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा।
तथैव संकटादस्मान्मामुद्धर्तुमिहार्हसि॥

(महा०, वन० २६३)

कहा—'सहदेव! तुम जाकर शीघ्र ही मुनियोंको बुला लाओ। उनसे कहना कि आपलोग चलकर भोजन कीजिये।' सहदेवने श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन किया।

दुर्वासा और उनके शिष्य स्नान करके अघमर्षण कर रहे थे, एकाएक उन सबको अजीर्णकी डकार आयी। उन्हें ऐसा जान पड़ने लगा कि मानो उन्होंने अभी खूब डटकर भोजन किया है। सब जलके बाहर निकले, एकने दूसरेको देखा, सबने सबके मनका भाव समझ लिया। उन्होंने दुर्वासासे कहा—'महाराज! हमलोग युधिष्ठिरसे भोजन-सामग्री तैयार करनेके लिये कहकर यहाँ आये थे; परंतु अब अचानक हमारा पेट भर गया है, अन्न गलेतक लगा हुआ है, अब हम वहाँ चलकर क्या भोजन करेंगे। व्यर्थ रसोई बनवाकर हमने उन्हें कष्ट दिया। अब क्या किया जाय?' दुर्वासाने कहा—'यह बात तो सर्वथा सत्य है कि हमने पाण्डवोंका अपराध किया है; अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि वे हमपर रुष्ट न हो जायँ। राजर्षि अम्बरीषका प्रभाव मैं अबतक नहीं भूल सका हूँ, मैं भगवत्प्रेमी भक्तोंसे बहुत डरता हूँ। पाण्डव महात्मा, धर्मात्मा, वीर, विद्वान्, तपस्वी, सदाचारी और भगवान्के परम भक्त हैं। जैसे आग रूईके ढेरको जला सकती है, वैसे ही वे क्रोधित होनेपर हमको भस्म कर सकते हैं। इसलिये उनसे पूछे बिना ही हमलोग यहाँसे भाग चलें! इसीमें हमारा कल्याण है।' दुर्वासाकी बात सुनकर उनके सब शिष्य इधर-उधर भाग गये। सहदेवने इधर-उधर घाटोंपर ढूँढ़ा; उन लोगोंका कहीं पता नहीं चला। वहाँ रहनेवाले तपस्वियोंसे सहदेवको मालूम हुआ कि वे लोग भाग गये। सहदेवने लौटकर सब समाचार पाण्डवोंको सुनाया। युधिष्ठिरको बड़ी चिन्ता हुई, वे सोचने लगे 'अब न जाने कितनी रात गये दुर्वासा आयेंगे और भोजन माँगेंगे, उस समय वे हमलोगोंको शाप दे सकते हैं।' श्रीकृष्णने उन्हें सारी बातें बतायीं और अपने आगमनका प्रयोजन बतलाकर कहा कि 'जो लोग धर्मके अनुसार आचरण करते हैं, वे

सब प्रकारकी विपत्तियोंसे छूट जाते हैं।' पाण्डवोंने उनकी स्तुति की...... 'प्रभो! यह सब तुम्हारी ही कृपाका फल है। समुद्रमें डूबते हुए मनुष्य जैसे जहाजके सहारे उबर जाते हैं वैसे ही हम तुम्हारे भरोसे दुस्तर विपत्तियोंसे बचते रहते हैं। हम तुम्हारे शरण हैं।' द्रौपदी और पाण्डवोंकी अनुमति लेकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाको लौट गये। पाण्डव ब्राह्मणों और अपनी प्यारी पत्नी द्रौपदीके साथ एक वनसे दूसरे वनमें विचरने लगे।

एक दिन पाँचों पाण्डव वनमें गये हुए थे, आश्रमपर द्रौपदी अकेली थी। दैववश सिन्धुदेशका राजा जयद्रथ उसी रास्तेसे निकला। अनुपम सुन्दरी द्रौपदीको देखकर वह मोहित हो गया। द्रौपदीकी अंगकान्तिसे सारे वनको जगमगाते हुए देखकर वह एकटक द्रौपदीको देखने लगा और सोचने लगा कि यह कोई अप्सरा है, देवकन्या है अथवा मनमोहिनी माया है। उसका मन विचलित हो गया। उसने अपने मित्र राजा कोटिकास्यको बुलाकर कहा—'मित्र! अब मैं ब्याह करने न जाऊँगा, मैं तो इसी सुन्दरीसे विवाह करूँगा। तनिक जाकर पता तो लगाओ कि यह स्त्री कौन है।' कोटिकास्यने द्रौपदीके पास जाकर उसके रूप, सौन्दर्य, गुण आदिकी बहुत प्रशंसा की और उसका परिचय पूछा। द्रौपदीने अपने शरीरको सँभालकर कहा—'भाई! मेरी-जैसी स्त्रीको पर-पुरुषसे बात नहीं करनी चाहिये; परंतु इस समय यहाँ और कोई नहीं है, इसलिये मैं तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये विवश हो रही हूँ।' इस प्रकार कहकर द्रौपदीने अपना और अपने पतियोंका परिचय दिया और कहा कि 'मेरे पति अभी आनेवाले ही हैं; तुमलोग थोड़ी देरतक ठहर जाओ, वे आनेपर तुम्हारा विधिवत् स्वागत-सत्कार करेंगे।' द्रौपदी इतना कहकर अतिथि-सत्कारके लिये पर्णशालाके अन्दर चली गयी और कोटिकास्य जयद्रथके पास लौट आया। कोटिकास्यकी सब बातें सुनकर जयद्रथ पागल-सा हो गया और बिना पूछे पर्णशालाके अन्दर घुस गया। वह

द्रौपदीके पास जाकर कुशल-समाचार पूछने लगा। द्रौपदीने कहा—'भाई! तुम बैठ जाओ, मेरे पति आकर तुम्हारा स्वागत करेंगे।' जयद्रथने कहा—'देवि! मेरा सब स्वागत हो चुका; आओ मेरे रथपर बैठकर मेरे साथ चलो और अखण्ड सुख तथा ऐश्वर्यका भोग करो। राज्यश्रीहीन दीन उदासीन पाण्डवोंको छोड़ दो। चलो, समूचे सिन्धु-सौवीर देशकी महारानी बनकर मेरे साथ मजेसे चैन करो।' द्रौपदीका हृदय काँप उठा, उसकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं, वह उस स्थानसे पीछे हट गयी। द्रौपदीने उसे झिड़ककर कहा—'खबरदार! बस, अब ऐसी बात जबानसे निकाली तो.......। ऐसी बात कहते तुझे लज्जा नहीं आती? दुष्ट! तू राजा बना बैठा है!'

द्रौपदी मन-ही-मन सोचने लगी कि 'इसके पास सेना है, सहायक हैं, यह स्वयं बलवान् है; यदि मुझे बलात् पकड़ ले जाय तो मैं क्या करूँगी!' कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये कि यह कुछ देर विलम जाय और तबतक मेरे पतियोंमेंसे कोई-न-कोई आ जाय तो मेरी रक्षा हो सके। द्रौपदीका मुँह लाल हो गया, आँखोंमें खून उतर आया। वह कहने लगी—'मूर्ख! जो कभी युद्धमें विचलित नहीं हुए उन पाण्डवोंके सम्बन्धमें ऐसी बात कहते समय तेरी जीभ गिर जानी चाहिये। क्या तेरे मित्रोंमें ऐसा कोई तेरा हितैषी नहीं है, जो तुझे नरकमें गिरनेसे बचा ले? क्या तू धर्मराजको जीत सकता है? इस समय तेरी चेष्टा वैसी ही है, जैसे कोई सोये हुए सिंहको लात मारकर, उसकी गर्दनके बाल उखाड़कर भागनेकी चेष्टा कर रहा हो। तू किसी भी लोकमें, किसी भी कन्दरामें छिपकर अर्जुनके बाणोंसे नहीं बच सकता। नकुल और सहदेवसे युद्ध करते समय तू अनुभव करेगा कि तूने विषैले नागके पूँछपर पैर रखा है।'

जयद्रथने कहा—'मुझे धमकाओ मत, मैं पाण्डवोंको अपनेसे नीच समझता हूँ। तुम्हें मेरे साथ चलना ही होगा, मैं तुम्हें बलात् पकड़कर ले चलूँगा।' द्रौपदीने कहा—'मैं अबला नहीं हूँ। मैं पाण्डवोंकी

धर्मपत्नी होनेके कारण महाबलशालिनी हूँ। मैं तेरे सामने कभी दीन वचन नहीं कह सकती। मेरे रक्षक भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं; तेरी क्या मजाल जो मुझे छू सके। गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनकर तू भाग जायगा। यदि अपने पतियोंके विरुद्ध कभी एक बात भी मेरे मनमें न आयी हो तो मैं सत्य-सत्य शपथ करके कहती हूँ कि कुछ ही क्षणोंके बाद तुझे अपने पतियोंकी कैदमें देखूँगी। मैं देखूँगी कि वे तेरे सिरके बाल पकड़कर घसीटते हुए लिये आ रहे हैं। यदि तू मुझे बलपूर्वक ले जायगा तो भी मैं तुझसे नहीं डर सकती। अभी-अभी पाण्डव आते हैं।' द्रौपदी कह ही रही थी कि जयद्रथने झपटकर उसे पकड़ना चाहा। द्रौपदीने पुरोहित धौम्यको अपनी रक्षाके लिये पुकारते हुए, अपने दुपट्टेको इस प्रकार झटका कि जयद्रथ कटे हुए पेड़की तरह चारों खाने चित्त जमीनपर गिर पड़ा। धौम्यने आकर बहुत समझाया-बुझाया, परंतु उसने उनकी एक बात नहीं सुनी। द्रौपदी भी उसके स्पर्शसे बचनेके लिये पुरोहित धौम्यके चरण छूकर बारम्बार लम्बी साँस भरती हुई जयद्रथके रथपर सवार हो गयी। उसने रथ हाँका, धौम्य उसके पीछे-पीछे चलने लगे।

वनमें गये हुए पाण्डवोंके सामने अनेकों अपशकुन होने लगे। युधिष्ठिरने प्रेरणा की कि हमें यह वन सूना-सा दीख रहा है! शीघ्र-से-शीघ्र आश्रमपर चलो। आश्रमपर पता लगाकर भीमसेन और अर्जुनने जयद्रथका पीछा किया। शेष तीनों भाई भी उनके पीछे हो लिये। उनके भयंकर शब्दसे वह वन गूँज उठा। उन्हें देखते ही जयद्रथकी हिम्मत पस्त हो गयी। वह डरकर द्रौपदीसे पूछने लगा—'ये जो पाँचों वीर मेरी ओर दौड़े आ रहे हैं, वे कौन-कौन हैं बतलाओ तो सही।' द्रौपदीने कहा—मूर्ख! यह नीच कर्म करनेके बाद तू उन धर्मात्माओंका परिचय पूछ रहा है! ये पाँचों वीर मेरे स्वामी हैं, अब तेरे पक्षका कोई आदमी नहीं बच सकता। उनका दर्शन हो जानेके बाद न मुझे दुःख और न तेरा कुछ डर है। अब तू शीघ्र

ही मरनेवाला है, इसलिये धर्मका खयाल करके तेरे प्रश्नका उत्तर दे देना चाहिये। सुन, जिसकी ध्वजाके सिरेपर बँधे हुए दो मृदंग रथ चलनेके समय स्वयं ही बजते रहते हैं, जिनके शरीरका रंग सोनेके समान उज्ज्वल और चमकीला है, जिनकी नाक नुकीली और ऊँची है, जिनके दोनों नेत्र विशाल हैं और जो धर्मके मर्मज्ञ हैं, वे मेरे पति युधिष्ठिर हैं।' इसी प्रकार द्रौपदीने पृथक्-पृथक् सबका परिचय दिया। तबतक पाण्डव पहुँच चुके थे, पैदल सेनाने शस्त्र-त्याग करके हाथ जोड़ लिये। इससे पाण्डवोंने उसपर प्रहार नहीं किया। सवारोंको प्राणोंके लाले पड़ गये।

हमें न युद्धका विशेष वर्णन करना है और न तो किसको किसने मारा यही बतलाना है। युद्धका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि जयद्रथ चुपकेसे रणभूमि छोड़कर भाग गया। युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव द्रौपदीको लेकर आश्रमपर लौट आये। भीमसेन और अर्जुन जयद्रथको पकड़नेके लिये आगे बढ़े। युधिष्ठिरने कहा—'भाई! जयद्रथ दुर्योधनका बहनोई है, इसलिये वह हमारा भी बहनोई है। दुर्योधनकी बहिन दुश्शला और माता गान्धारीके दुःखका खयाल करके उसे मारना मत, भला।' द्रौपदीने कहा—'नहीं-नहीं, उस कुल-कलंक नराधमको जीता न छोड़ना।' भीमसेन और अर्जुनने जाकर जयद्रथको पकड़ लिया और बाल खींचकर घसीटते हुए घूँसोंसे खूब पीटा। भीमसेनकी मारसे वह बार-बार बेहोश हो जाता था। अर्जुनने कहा कि बड़े भैयाकी बात याद रखना। भीमसेनने लाचार होकर मारना बंद कर दिया। उसके सिरके बाल उखाड़ डाले, रूप विरूप कर दिया, पाँच चोटियाँ रख दीं। वह चुपचाप खड़ा रहा, सिटपिटाया नहीं। भीमसेनने कहा—'तुझे मैं एक शर्तपर छोड़ सकता हूँ—वह यह है कि अब तुम आजसे अपनेको राजा मत कहना; जहाँ जाना दास ही बताना।' जयद्रथने बिना ननु-नच किये भीमसेनकी शर्त मंजूर कर ली।

भीमसेन जयद्रथको बाँधकर युधिष्ठिरके पास ले आये। उसकी

दुर्दशा देखकर पहले तो युधिष्ठिरको हँसी आ गयी, परंतु फिर उन्होंने अपनेको सँभालकर उसे छुड़वा दिया। द्रौपदीने भी कहा—'हाँ, हाँ अब इसे छोड़ दो।' राजा जयद्रथ मर गया, दास जयद्रथ जीवित रहे; इससे पाण्डवोंका गौरव बढ़ता ही है। धर्मराजने जयद्रथको धर्मका उपदेश दिया और कहा कि 'भगवान्‌का भजन करो और अब ऐसा कुकर्म करनेका विचार त्याग दो। भगवान् तुम्हें सद्‌बुद्धि दें। तुम्हारा कल्याण हो।' जयद्रथसे कुछ कहते नहीं बना, वह सिर नीचा किये वहाँसे विदा हो गया।

द्रौपदी-हरणसे पाण्डवोंको बड़ा दुःख हुआ। वे अपनी दुरवस्थासे व्यथित हो गये। मार्कण्डेय ऋषिने रामायणकी कथा सुनायी और बताया कि 'भगवान् रामचन्द्रकी धर्मपत्नी सीताका भी हरण हो गया था और उन्हें तुमसे भी अधिक विपत्तियोंका सामना करना पड़ा था। इसके लिये चिन्तित होना उचित नहीं। इस घटनामें भी तुम्हारे कल्याणका बीज है। भगवान्‌की प्रत्येक देनको उत्सुकता और प्रसन्नताके साथ ग्रहण करना चाहिये। इसीमें जीवोंका परम कल्याण है।

पाण्डव वनमें द्रौपदीके साथ वनवासके बारहवें वर्षके अवशेष दिन व्यतीत करने लगे।

(१०)

अपनी प्रतिज्ञाका पालन, नियमोंपर दृढ़ता और भगवान्‌का भरोसा मनुष्यको सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचा लेता है—अनेकों प्रकारकी विपत्तियोंसे मुक्त होनेका एकमात्र साधन है—नियमोंमें बँध जाना। जो नियमोंका उल्लंघन करके अपने जीवनको मर्यादाहीन और उच्छृंखल बना लेते हैं, वे किसी भी बातपर स्थिर नहीं रह सकते। नीतिशास्त्रमें कहा गया है कि जैसे मलिन वस्त्रवाले पुरुष जहाँ-कहीं भी बैठ जाते हैं, उन्हें वस्त्रकी गंदगीका खयाल नहीं रहता, वैसे ही एक बार सदाचारके नियमसे च्युत हुए पुरुष शक्ति और सुविधा रहनेपर भी सदाचारके नियमोंका पालन करनेमें प्रमाद करने लगते हैं। इसीसे

संसारके सभी महापुरुष जीवनके नियमका आदर करते हैं और अपने-आपको अपने ही बनाये नियमोंसे नियन्त्रित रखते हैं।

द्रौपदीके जीवनमें वह समय बड़े ही कष्टका था। जीवनकी और परिस्थितियोंमें वह अपनेको द्रुपदकी पुत्री, पाण्डवोंकी पत्नी और श्रीकृष्णकी सखी कहकर विपत्तियोंसे त्राण पा सकती थी; परंतु अब ऐसे दिन आ गये कि वह इन बातोंको भी नहीं कह सकती थी। वनवासके बारह वर्षोंमें अब केवल एक दिन ही अवशेष था, कलसे सबको अज्ञातवास करना था। पाण्डव सब-के-सब वीर थे, वे अपनी रक्षा अकेले रहकर भी कर सकते थे; परंतु द्रौपदी क्या करे, कैसे करे, कहाँ रहे—यह प्रश्न था। युधिष्ठिरकी चिन्ताका पार न था। वे सोचते थे—हमलोग विराटनगरमें रहकर अपनेको छिपा सकते हैं, परंतु द्रौपदी वहाँ अपनेको किस प्रकार छिपायेगी? द्रौपदीने सामान्य स्त्रियोंकी भाँति कभी कोई काम किया नहीं, क्या यह वहाँ दासी होकर रहेगी? हमलोग द्रौपदीको प्राणोंसे भी बढ़कर प्यार करते हैं, यह सर्वथा आदरणीय है। इसकी व्यवस्था कैसे हो?

महाराज युधिष्ठिर यही सब सोच रहे थे। उनकी चिन्ता द्रौपदीसे छिपी न रही। उसने महाराजसे कहा—'राजन्! आप मेरे लिये कोई चिन्ता न करें। बड़े लोगोंके घर अच्छे वंशकी ऐसी स्त्रियाँ रहा करती हैं, जो रनिवासमें शृंगारका काम करती हैं। उन्हें 'सैरन्ध्री' कहते हैं। मैं अपनेको वहाँ सैरन्ध्रीके रूपमें ही प्रकट करूँगी। सैरन्ध्रीपर लोगोंका विश्वास होता है। मैं राजभवनमें अपनी रक्षा कर लूँगी।' मैं वहाँ कहूँगी कि मेरे जीवनके कुछ नियम हैं, मैं उनका उल्लंघन नहीं कर सकती। मैं यह भी कहूँगी कि पहले मैं महाराज युधिष्ठिरके रनिवासमें काम कर चुकी हूँ। मैं केशोंका शृंगार करनेमें बड़ी निपुण हूँ। महारानी सुदेष्णा बड़े अच्छे स्वभावकी हैं, वे मेरी रक्षा करेंगी! युधिष्ठिरने स्वीकृति देते हुए कहा कि वहाँ बड़ी सावधानीसे रहना, कोई तुम्हें पहचान न ले।

पाण्डवोंने विराटनगरकी यात्रा की। रास्तेमें द्रौपदीके थक जानेपर युधिष्ठिरकी आज्ञासे अर्जुनने द्रौपदीको कंधेपर ले लिया। पर्वतशिखरके पास श्मशानके निकट एक शमीका वृक्ष था। उसपर उन्होंने अपने शस्त्रास्त्र बाँधकर रख दिये, उन लोगोंने आपसमें संकेत करनेके लिये अपने नाम रख लिये, अब उनके नाम हो गये—जय, जयंत, विजय, जयत्सेन और जयद्बल! सब-के-सब महाराज विराटकी राजधानीमें पहुँचे। युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे गद्‌गदस्वरसे माँ दुर्गाकी स्तुति की, जिससे उन्होंने प्रकट होकर उन्हें वरदान दिया कि मैं सब प्रकारसे तुम्हारी रक्षा करूँगी। क्रमशः पाण्डव राजा विराटके दरबारमें गये और उन्होंने उनकी इच्छाके अनुसार पाँचोंको अपने पास रख लिया।

विराटनगरमें द्रौपदीको अकेली जाती देखकर बहुत-से स्त्री-पुरुष उसके पास जा-जाकर पूछने लगे कि 'तुम कौन हो और यहाँ क्या करना चाहती हो?' मैली साड़ी पहने हुए द्रौपदी जब अपनेको सैरन्ध्री बतलाती, तब सहसा किसीको विश्वास नहीं होता। विराटकी रानी सुदेष्णा अपने महलकी छतपर खड़ी होकर नगरकी ओर देख रही थी। द्रौपदीपर दृष्टि पड़ते ही उसने उसको अपने पास बुलवा लिया और कहा—'कल्याणी! तुम कौन हो? क्या काम करना चाहती हो?' द्रौपदीने कहा—'मैं सैरन्ध्री हूँ, पहले महाराज युधिष्ठिरके रनिवासमें रहती थी। उनके राज्य-त्यागके कारण मैं आश्रयहीन हो गयी हूँ। मैं आश्रय पानेपर खूब मन लगाकर काम करूँगी।' रानीने कहा—'सुन्दरी! तुम्हारे मुँहसे ये बातें शोभा नहीं देतीं, तुम तो बहुत-सी दासियोंकी स्वामिनी होनेयोग्य हो। तुम्हारा शरीर सर्वांगसुन्दर है, बाल बड़े चिकने हैं, वाणी हंसकी-सी है। तुम्हारे चेहरेपर आत्मसम्मानकी झलक है। मैं तो तुम्हें देवकन्या, चन्द्रपत्नी रोहिणी अथवा विष्णुप्रिया महालक्ष्मी समझ रही हूँ। सच-सच कह दो न कि तुम कौन हो? द्रौपदीने कहा—'रानीजी! मैं देवी-दानवी कुछ नहीं हूँ, मैंने आपसे कह दिया न कि मैं पाण्डवोंके रनिवासमें रह चुकी हूँ, मैंने कृष्णपत्नी

सत्यभामाकी सेवा की है। बाल सँवारना, उबटन लगाना, फूलोंके गजरे बनाना मैं जानती हूँ। मैं बड़े सुखसे रही हूँ, इसलिये मेरा शरीर दासियोंका-सा नहीं जान पड़ता। पाण्डवोंके वनवाससे मुझे बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं। इस समय मैं आश्रय चाहती हूँ।'

रानी सुदेष्णाने कहा—'तुम्हें मैं बड़ी प्रसन्नतासे रख सकती हूँ; परंतु मुझे एक डर है, तुम्हारा सौन्दर्य देखकर राजा तुमपर मोहित हो सकते हैं। रनिवासकी स्त्रियाँ मुग्ध होकर तुम्हें एकटक देख रही हैं। महलके भीतरके वृक्ष तुम्हें देखनेके लिये कुछ झुक-से गये हैं। तुम्हारे रूप-लावण्यको देखकर वे मुग्ध हो जायँगे, इसीसे मैं तुम्हें अपने पास रखनेमें हिचक रही हूँ।' द्रौपदीने कहा—'रानीजी! राजा विराट अथवा संसारका और कोई भी पुरुष मेरा स्पर्श नहीं कर सकता; क्योंकि पाँच नौजवान गन्धर्व मेरे स्वामी हैं और वे गुप्तरूपसे सर्वदा मेरी रक्षा किया करते हैं, वे बड़े बली हैं, मुझपर किसीकी आँख लगते ही वे जान जाते हैं और उसको नष्ट कर डालते हैं। मैं किसीकी जूठन नहीं छूती, किसीके पैर नहीं धोती; इससे वे प्रसन्न रहते हैं। जो मुझसे यह काम करवाना चाहता है, उसपर वे नाराज हो जाते हैं। कोई पुरुष मेरा धर्म बिगाड़ नहीं सकता। मेरे पति गन्धर्व इस समय बड़े संकटमें पड़े हुए हैं, इसलिये मुझे आपका आश्रय लेना पड़ा है; फिर भी मेरी रक्षा करनेके लिये वे सर्वदा सावधान रहते हैं।' सुदेष्णाने द्रौपदीकी बातें मान लीं और अपने पास उसे रख लिया।

विराटनगरमें कीचक नामका एक विराटका साला रहता था। वही वहाँ सेनापति था। उसके विचार बड़े कलुषित थे। द्रौपदीपर दृष्टि पड़ते ही वह मोहित हो गया; तरह-तरहसे वह द्रौपदीको प्रलोभन देने लगा। वह द्रौपदीकी प्रशंसा करके अपनी अधीनता बतलाकर, भोग-विलासका लालच देकर द्रौपदीको अपने जालमें फँसानेकी चेष्टा करने लगा। द्रौपदीने कहा—'भाई! मैं हीनवंशकी सैरन्ध्री हूँ। लोग मुझे घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। मुझसे ऐसी बातें करना तुम्हारेयोग्य

नहीं है। मैं तो परायी स्त्री हूँ, मुझपर स्वभावसे ही दया करनी चाहिये। अपने धर्मका उल्लंघन मत करो, पापके वश मत होओ। जान-बूझकर नरककी धधकती हुई आगमें मत कूदो।' द्रौपदीकी बात सुनकर भी कीचकने नहीं सुनी। वह जानता था कि परस्त्रीको पानेका संकल्प भी महापाप है; फिर भी वह कामवश होकर साम, दान, दण्ड और भेदका आश्रय लेकर द्रौपदीको पानेकी चेष्टा करने लगा।

एक दिन कीचककी सलाहसे किसी कामके बहाने सुदेष्णाने द्रौपदीको उसके घर भेज दिया। द्रौपदी दासी थी, वह जानेमें हिचकती थी; फिर भी रानीकी आज्ञा पालन करनेके लिये उसे जाना ही पड़ा। वहाँ जानेपर कीचकने द्रौपदीके चादरका कोना पकड़ लिया, द्रौपदी भगकर राजसभामें आयी। कीचकने उसका पीछा किया और राजसभामें आते-आते द्रौपदीके बाल पकड़कर उसे जमीनपर गिरा दिया और एक लात मारी। उस समय भीमसेन और युधिष्ठिर दोनों ही सभामें मौजूद थे। वे दोनों क्रोधसे अधीर हो उठे, युधिष्ठिरने भीमसेनको सावधान कर दिया। द्रौपदीने राजा विराटसे कहा—'महाराज! मैं उन महापुरुषोंकी स्त्री हूँ, जिनके वैरी संसारमें सुखकी नींद नहीं सो सकते, जो क्रोधित होनेपर तीनों लोकोंका नाश कर सकते हैं। आप कीचकको दण्ड दीजिये, आप चुपचाप क्यों देख रहे हैं। यह तो राजाका धर्म नहीं है।' द्रौपदीके बहुत कुछ कहनेपर भी राजाने कीचकको कोई दण्ड नहीं दिया। कीचक उनका सेनापति था और वे उसके प्रभावसे डरते थे। युधिष्ठिरने कहा—'सैरन्ध्री! तुम रनिवासमें सुदेष्णाके पास जाओ, यहाँ मत रहो। तुम्हारे स्वामी गन्धर्व समय आनेपर अपना काम करेंगे।' द्रौपदीकी आँखें लाल हो रही थीं, बाल बिखरे हुए थे। सुदेष्णाने उसे बहुत समझाया और कहा कि कहो तो कीचकको प्राणदण्ड दिला दूँ। द्रौपदीने कहा—'मेरे स्वामी गन्धर्व ही उसे दण्ड देंगे और किसीके दण्ड देनेकी आवश्यकता नहीं। कीचककी मृत्यु समीप है, अब वह बच नहीं सकता।'

कीचकके किये हुए अपमानसे द्रौपदीका कलेजा जल रहा था। रातको सबके सो जानेपर छिपकर वह भीमसेनके पास गयी और रोकर करुणस्वरसे कहने लगी—'स्वामी! अभी पापी कीचक जीवित है और आप सुखकी नींद सो रहे हैं! उठिये, मुर्देकी तरह निर्जीवभावसे मत सोइये। सिवा मुर्देके और किसकी स्त्रीका अपमान इस प्रकार किया जा सकता है?' भीमसेनके पूछनेपर बड़े विस्तारसे द्रौपदीने अपनी करुण कथा कह सुनायी। भीमसेनने द्रौपदीको आश्वासन दिया और कहा कि 'इस समय प्रकटरूपसे कीचकको मारनेका अवसर नहीं है; इसलिये तुम ऐसा उपाय करो कि कीचक मुझे एकान्तमें मिल जाय। कोई जानने न पाये और मैं उसे मार डालूँ।' भीमसेनने आगे कहा कि 'कल संध्याके समय तुम कीचकसे मिलना और रातको मिलनेके लिये एक स्थान निश्चित कर लेना। मेरे खयालसे राजा विराटकी नाट्यशालामें, जहाँ कन्याएँ दिनमें नृत्य आदि सीखती हैं और रातको चली जाया करती हैं, ठीक होगा। वहाँ एक मजबूत पलंगपर बढ़िया सेज भी लगी हुई है। रातको वहाँ किसी तरह कीचक पहुँच जाय तो मैं उसे वहीं मार डालूँगा। सावधान! कीचकसे मिलते और वादा करते समय तुम्हें और कोई देख न ले।' द्रौपदीके मनमें पापियोंके प्रति बड़ी घृणा थी। वह चाहती थी कि संसारसे पापियोंका अस्तित्व उठ जाय, वे मिट जायँ। इसके लिये वह प्राणपणसे चेष्टा करती थी। उसने भीमसेनकी बात मान ली और उसीके अनुसार रातको नाट्यशालामें कीचकको आनेके लिये कह दिया।

रातको भीमसेन अन्धकारमें जाकर उसी स्थानपर बैठ गये, समयपर कीचक आया। अँधेरेमें भीमसेनके शरीरका स्पर्श करके उसने सोचा कि यह द्रौपदी है। वह स्त्रियोंको लुभानेवाली अनेकों प्रकारकी बातें कहकर द्रौपदीको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगा। भीमसेनने कहा—'मेरे सौभाग्यसे तुम्हारे-जैसा सुन्दर पुरुष प्राप्त हुआ

है। तुम्हारी अपनी प्रशंसा भी ठीक ही है, परंतु इसके पहले तुमने कभी ऐसा कोमल स्पर्श नहीं किया होगा। अहा! तुम बड़े काम-कला-रसिक हो—रसिकशिरोमणि हो—स्त्रियोंको रिझानेमें तुम्हारे-जैसा निपुण और कौन है।' यों कहकर भीमसेन उछल पड़े और 'रे पापी! अपने पापका मजा चख।' इस प्रकार कहते हुए उन्होंने कीचकके बाल पकड़कर ऐसा धक्का दिया कि वह जमीनपर गिर पड़ा। कुछ समयतक कुश्ती होती रही; अन्तमें भीमसेनने उसे कुचल डाला। उसके सिर, पैर आदिको उसके शरीरमें ही घुसेड़कर उसे मांसका एक लोथड़ा बना दिया। किसीको पतातक नहीं चला। भीमसेन वहाँसे गायब हो गये। लोगोंने कीचकके शरीरको पहचानकर निश्चय किया कि सैरन्ध्रीका अपमान करनेके कारण उसके स्वामी गन्धर्वोंने ही कीचककी यह दशा की होगी।

कीचककी मृत्युका समाचार उसके भाई-बन्धुओंको मिला। वे नाट्यशालामें आये, कीचककी दशा देखकर उनके रोंगटे खड़े हो गये। वे कीचककी लोथको मरघटपर ले जानेके लिये सजा ही रहे थे कि उनकी दृष्टि द्रौपदीपर पड़ गयी। उन्होंने कहा कि 'इसी पापिनीके कारण कीचककी मृत्यु हुई है, इसलिये इसे अभी मार डालना चाहिये।' किसीने कहा—'नहीं, नहीं, मारनेकी आवश्यकता नहीं है; इसे बाँधकर श्मशानपर ले चलो और कीचकके शवके साथ ही इसे भी जला डालो।' राजा विराटसे अनुमति माँगी गयी, व कीचकके उपद्रवी भाई-बन्धुओंसे बहुत ही डरते थे। उन्होंने उपकीचकोंकी बात मान ली। उन सबोंने द्रौपदीको कीचककी लाशके बराबर बिठाकर बाँध लिया और श्मशानकी यात्रा की। द्रौपदी अनाथकी भाँति चिल्लाने लगी और जोर-जोरसे कहने लगी—'जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल—मेरे पाँचों स्वामियो! मेरी पुकारपर ध्यान दो; ये उपकीचक मुझे जलानेके लिये श्मशानकी ओर ले जा रहे हैं।' भीमसेनके कानोंमें यह आवाज पहुँची। उन्होंने बड़ी कर्कश ध्वनिसे

उत्तर दिया—'डरो मत, गन्धर्वोंने तुम्हारी आवाज सुन ली है।' द्रौपदीको कुछ धैर्य हुआ।

चटपट वेश बदलकर फाटक बिना खोले ही चहारदीवारी लाँघकर भीमसेन श्मशानकी ओर बढ़े। एक बहुत ऊँचा और मोटा ऊपरसे सूखा बड़ा-सा पेड़ उखाड़ लिया और उसे कंधेपर रखकर वे बड़े वेगसे उपकीचकोंकी ओर दौड़े। उस समय भीमसेनका पैर जिस वृक्षसे लग जाता था वही टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाता था। उपकीचकोंने उन्हें गन्धर्व ही समझा। भला, मनुष्यमें भी ऐसी शक्ति हो सकती है? वे सब-के-सब घबरा गये। बचनेका कोई उपाय न देखकर उनका दिल धड़कने लगा। उन्होंने सोचा कि शायद सैरन्ध्रीको छोड़ देनेसे हमलोगोंकी जान बच जाय; इसलिये वे द्रौपदीको छोड़कर नगरकी ओर भागे; परंतु भीमसेनने उनका पीछा करके कुचल डाला और उसी वृक्षसे उन सबको मार डाला। द्रौपदीका बन्धन काटकर दिलासा देते हुए जोरसे उन्होंने कहा—'अब तुम्हें कोई डर नहीं है; जो तुम्हें क्लेश देगा, उसे यों ही मौतके मुँहमें जाना होगा।' भीमसेन चले गये। रातों-रात यह खबर नगरमें फैल गयी। बहुत-से नगरवासी मरघटपर आ गये।

नगरवालोंने लौटकर वहाँकी सब बातें राजा विराटको सुनायी। विराट द्रौपदीसे बहुत ही भयभीत हुए। उन्होंने अपनी रानीसे कहा—'प्रिये! सैरन्ध्रीके आते ही तुम मेरी ओरसे उससे कह देना कि 'तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, जा सकती हो। हम तुम्हारा बुरा नहीं चाहते, गन्धर्वोंका पराक्रम देखकर हम भयभीत हो गये हैं। यह भी कह देना कि गन्धर्व तुम्हारी रक्षा करते हैं, इसलिये राजा स्वयं तुमसे कहनेका साहस नहीं करते। स्त्रियाँ स्त्रियोंसे कहें, इसमें कोई दोष नहीं है।' सुदेष्णाने उनकी बात स्वीकार कर ली। द्रौपदी जब श्मशानसे लौटकर नगरमें आने लगी, तब उसे देखकर नगरवासी इधर-उधर भागने लगे। वे गन्धर्वोंसे डर रहे थे। द्रौपदीने पाकशालाके सामने आकर संकेतसे

ही अपनी कृतज्ञता प्रकट की और नाट्यशालाके सामने आनेपर बृहन्नला-वेशधारी अर्जुनको प्रेमभरा उलाहना दिया। अर्जुनने इशारेसे ही द्रौपदीको अपनी वेदना और समवेदना जतायी। द्रौपदी उन कन्याओंके साथ ही राजभवनमें गयी। सुदेष्णाने जाते ही राजाकी आज्ञा सुना दी। इसपर द्रौपदीने कहा—'रानीजी! अब मैं यहाँसे चली जाऊँगी! अब आप कृपा करके केवल तेरह दिन और अपने पास रहने दें। तेरह दिनके बाद मेरे स्वामी गन्धर्वोंका मनोरथ पूर्ण हो जायगा और वे आपका बड़ा हित करेंगे; इसलिये इस समय आप मुझे रहनेकी अनुमति दे दें।' सुदेष्णाने द्रौपदीकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। द्रौपदी सुखसे रनिवासमें रहने लगी।

जब जासूसोंसे कीचक-वधका वृत्तान्त कौरवोंको मालूम हुआ, तब उनके मनमें इस बातकी शंका हुई कि हो-न-हो पाण्डव वहीं छिपे हैं। भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर और कृपाचार्यके मना करनेपर भी उन लोगोंने विराट नगरपर चढ़ाई कर दी। एक ओरसे सुशर्माने गौओंका हरण करनेके लिये विराटकी गोशालापर आक्रमण किया और उसका मुकाबला करनेके लिये विराटके चले जानेपर दूसरी ओरसे कौरवोंने धावा बोल दिया। सुशर्माने विराटको हरा ही दिया था; परंतु युधिष्ठिरकी सलाहसे भीमसेन उस युद्धमें आगे कर दिये गये और उन्होंने सुशर्माको मार डाला। उसी समय कौरवोंका आक्रमण होनेपर विराट-नगरमें उनका मुकाबला करनेवाला कोई नहीं था। राजकुमार उत्तरने कहा कि 'यदि कोई चतुर सारथि मिल जाय तो मैं कौरवोंका सामना कर सकता हूँ।' द्रौपदीने अर्जुनकी प्रेरणासे उत्तरकुमारसे कहा—'भैया! ये जो आपके सामने बृहन्नला हैं, ये पहले सारथिका काम कर चुके हैं। ये नपुंसक होनेपर भी धनुर्विद्यामें बड़े निपुण हैं। ये पाण्डवोंके पास थे, तब मैं भी वहीं थी, इसलिये मैं इनको जानती हूँ। तुम इन्हींको सारथि बनाकर कौरवोंका सामना करो।' कुमार उत्तरने अर्जुनको सारथि बनाया। युद्धमें उत्तरके डरने

और रोने-चिल्लानेपर भी अर्जुनने उसे रथमें बाँधकर स्वयं ही अपना पूरा पराक्रम प्रकट किया और कौरवोंपर विजय प्राप्त की।

समयपर पाण्डव प्रकट हुए। विराटने उनका सम्मान किया। उन्होंने अपनी कन्या उत्तरासे अर्जुनके विवाहका प्रस्ताव किया। अर्जुनने कहा—'उत्तराके प्रति मेरा पुत्री-भाव है, इसलिये मैं विवाह नहीं कर सकता।' अभिमन्युके साथ विवाहका निश्चय हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम, काशिराज शैब्य आदिको निमन्त्रण भेजा गया। सबके आनेपर उत्तराके साथ अभिमन्युका विवाह हुआ। वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर द्रौपदी और पाण्डव अपने मित्रों और सम्बन्धियोंसे मिलने-जुलने लगे, आनन्द मनाने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंको इतना धन दिया कि वे धनी हो गये। विराट और द्रुपदने भी पर्याप्त सम्पत्ति दी। अब उनके सामने केवल एक ही प्रश्न रहा कि अपना पैतृक राज्य कैसे प्राप्त किया जाय?

(११)

संतोंके जीवनमें धर्मसंस्थापन और अधर्मविनाश—इन दोनोंके सामान्यरूपसे रहनेपर भी किसीमें पहलेकी विशेषता होती है तो किसीमें दूसरेकी। बहुत-से महापुरुषोंमें दोनों ही बातें होती हैं। सच्ची बात तो यह है कि एक बात दूसरेकी सहायक है। आसुरी सम्पत्तिके नाशसे दैवी सम्पत्तिकी अभिवृद्धि होती है और दैवी सम्पत्तिकी अभिवृद्धिसे आसुरी सम्पत्तिका नाश होता है। अबतक संसारमें जितने सज्जन पुरुष हुए हैं, सबने एक स्वरसे इस बातपर जोर दिया है। द्रौपदीके जीवनमें जहाँ धर्म-संस्थापनकी प्रेरणा देखी जाती है, वहीं अधर्म-निवारणके लिये उत्तेजना भी देखी जाती है। वह कौरवोंके साथ समझौतेका प्रश्न उपस्थित होनेपर अप्रसन्न होती है, विरोध करती है और ऐसी चेष्टा करती है कि किसी-न-किसी प्रकार उनका नाश हो जाय। इसका केवल इतना ही कारण है कि वे दैवी सम्पत्तिके विरोधी हैं, अधर्मके पोषक हैं। धर्मराज्यके संस्थापनके लिये उनका नाश आवश्यक है।

वनवासके बारह वर्ष और अज्ञातवासका एक वर्ष व्यतीत हो गया। द्रुपद, विराट, श्रीकृष्ण, बलराम, सात्यकि आदि एकत्र हुए। कौरवोंसे किस प्रकारका व्यवहार किया जाय, यह चर्चा चलने लगी। यहाँके दूत वहाँ और वहाँके दूत यहाँ जाने-आने लगे। कोई संधिके पक्षमें था तो कोई विरोधके पक्षमें। कौरवोंकी ओरसे संधिका संदेश लेकर संजय आये। उन्होंने युधिष्ठिर आदिसे धृतराष्ट्रका संदेश कहा। अर्जुन और श्रीकृष्णसे बात करनेके लिये वे अर्जुनके अन्त:पुरमें गये। उस समय श्रीकृष्ण, सत्यभामा, अर्जुन और द्रौपदी वहीं थे। उस महलमें बिना आज्ञाके नकुल, सहदेव और अभिमन्युका भी प्रवेश नहीं था। संजयने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण और महात्मा अर्जुन शरीरमें उत्तम चन्दन लगाये, विविध प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर एक ही बहुमूल्य आसनपर बैठे थे। श्रीकृष्णके पैर अर्जुनकी गोदमें और अर्जुनके पैर द्रौपदीकी गोदमें थे। श्रीकृष्णका सिर सत्यभामाकी गोदमें था। अर्जुनने संजयको स्वर्णपीठपर बैठनेका इशारा किया; परंतु उनकी हिम्मत नहीं पड़ी। वे आज्ञा पाकर धृतराष्ट्रका संदेश सुनाने लगे। उसका आशय यह था कि पाण्डव धर्मात्मा हैं, उन्हें राज्यके कारण निरीह प्रजाका और भाई-बन्धुओंका रक्तपात नहीं करना चाहिये अर्थात् कौरव उन्हें राज्य भी न दें और पाण्डव युद्ध भी न करें। अर्जुनने संजयको उत्तर नहीं दिया। श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श करके उन्हें उत्तर देनेके लिये प्रेरित किया।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'संजय! चालाकीकी बातोंसे काम नहीं चल सकता। यदि पाण्डवोंका राज्य उन्हें नहीं मिलेगा तो किसी भी दशामें युद्ध नहीं रुक सकता। तुम जाकर बड़ोंको प्रणाम और छोटोंको हमारा कुशल-प्रश्न कहकर पितामह भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने कुरुवृद्ध धृतराष्ट्रसे कहना। तुम मेरा नाम लेकर उनसे कहना कि कुरुराज! अब आपके सिरपर महाभय आ गया है। आप ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर यज्ञ कर लीजिये। स्त्री-पुत्र आदिके साथ आमोद-

प्रमोद, सुपात्रोंको धनदान, स्वजनोंका भला कर लेना ही कौरवोंके लिये श्रेयस्कर है। अब वह दिन दूर नहीं, जब सारी पृथ्वीपर युधिष्ठिरका राज्य होगा। मैं उस समय हस्तिनापुरमें नहीं था, मेरे न रहनेके कारण द्रौपदीको 'गोविन्द-गोविन्द' कहकर कौरवोंकी सभामें रोना-चिल्लाना पड़ा था। आज भी वह बात मेरे हृदयमें खटक रही है। उसकी खटक घटी नहीं, बढ़ती ही गयी। मैं द्रौपदीकी इच्छा पूरी करूँगा और उसे सुखी करूँगा। जो अर्जुनसे शत्रुता करेगा, वह गाण्डीव धनुषके द्वारा मौतके घाट उतारा जायगा। मैं अर्जुनकी सहायता करूँगा। कौन है ऐसा कौरवोंमें, जो अर्जुनका सामना कर सके! उस दिन विराट-नगरकी लड़ाईमें यह बात प्रत्यक्ष हो चुकी है। त्रिलोकीका कोई भी वीर अर्जुनके सामने खड़ा नहीं रह सकता। कौरवोंकी जो इच्छा हो करें, संधि करें या युद्ध। दोनों ही स्थितियोंमें उन्हें पाण्डवोंका राज्य देना ही पड़ेगा।' श्रीकृष्ण चुप हो गये। संजयने लौटकर धृतराष्ट्रसे सब बातें कह दीं।

जब दोनों ओरसे युद्धकी तैयारी होने लगी, तब पाण्डवोंकी ओरसे यह निश्चय हुआ कि पहले संधिका संदेश लेकर श्रीकृष्ण कौरवोंके पास जायँ और बिना युद्धके ही यदि काम चल जाय तो इतना बड़ा रक्तपात क्यों किया जाय। कुछ लोग शान्तिके पक्षपाती थे और कुछ युद्धके। भीमसेनको शान्तिका प्रस्ताव करते देखकर द्रौपदी शोकसे व्याकुल हो उठी। उसने युद्धका समर्थन करनेवाले सात्यकि और सहदेवकी बड़ाई की और श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन्! कौरवोंका क्रूर व्यवहार आपसे छिपा नहीं है। पाण्डवलोग जिसके कारण राज्य-सुखसे भ्रष्ट होकर इतने कष्ट भोगते रहे हैं, वह भी आप जानते हैं। संजयके संधि-प्रस्ताव लानेपर धर्मराजने यहाँतक कह दिया कि हमें केवल अर्बस्थल, वृकस्थल, माकन्दी और वारणावत—ये चार गाँव तथा एक कोई पाँचवाँ गाँव मिल जाय तो मैं संधि कर लूँ; परंतु दुर्योधनने उनकी यह बात भी नहीं मानी। आप संधि कराने जा रहे

हैं तो जाइये, भगवन्! परंतु पाण्डवोंके न्याय और कौरवोंके अन्यायपर दृष्टि अवश्य रखियेगा।

'केशव! आप भले-भले कौरवोंकी सभामें जाइये; परंतु दुर्योधन आधा राज्य दिये बिना ही यदि संधिका प्रस्ताव करे तो आप मंजूर मत कीजियेगा। कौरवोंको जीतना कठिन नहीं है, पाण्डव और सृंजय मिलकर बड़ी आसानीसे उन्हें हरा सकते हैं। ऐसी आशा नहीं है कि साम या दानके द्वारा कौरव मान जायँगे। उनपर कृपा करनेकी आवश्यकता नहीं है, अपने जीवन और जीविकाकी रक्षाके लिये साम और दानके द्वारा न माननेपर शत्रुओंको दण्ड देनेका ही विधान है। वीर पाण्डव, सच्चे हितैषी पांचाल और यशस्वी यादवोंको मिलकर कौरवोंको उनके कुकर्मका फल चखाना चाहिये। विजयमें ही क्षत्रियोंका यश है। लोभवश अन्याय करनेवालेको मारना क्षत्रियोंका धर्म है। मैंने विद्वानोंके मुँहसे सुना है कि अवध्यका वध करनेसे जो पाप होता है, वही पाप वध्यका वध न करनेसे होता है। इसलिये ऐसा उपाय कीजिये, जिससे पाण्डवों, पांचालों और यादवोंको उस पापका भागी न होना पड़े। श्रीकृष्ण! इस पृथ्वीपर मेरे समान दुखिया और कौन स्त्री होगी। मैं महाराज द्रुपदकी अयोनिजा कन्या, धृष्टद्युम्नकी बहिन, आपकी प्रिय सखी, धर्मात्मा पाण्डुकी पुत्रवधू और वीर पाण्डवोंकी धर्मपत्नी हूँ। मेरे गर्भसे पाँच महारथी पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं। मैं ऐसी सौभाग्यवती होकर पाण्डवोंके सामने और आपके जीते-जी सभामें अपमानित की गयी, मैंने वह क्लेश सह लिया। उस समय पाण्डवोंको क्रोधरहित और निश्चेष्ट देखकर मैंने मन-ही-मन 'हे गोविन्द! मेरी रक्षा करो!' इस प्रकार पुकारकर तुम्हारा स्मरण किया था और तुमने मेरी रक्षा भी की थी। राजा धृतराष्ट्रने जब मुझसे वर माँगनेको कहा, तब मेरे वर माँगनेसे ही ये पाण्डव दासभावसे छूटे। कमलनयन श्रीकृष्ण! आप मेरा दुःख जानते हैं। मैं अपने पति और भाई-बन्धुओंके साथ दुःखके घोर समुद्रमें डूब रही हूँ, आप

हमारी रक्षा कीजिये। कौरवोंने बलपूर्वक मुझे दासी बनानेकी चेष्टा की थी। यदि ऐसी चेष्टा करनेपर भी वे जीवित रहें तो अर्जुनके धनुष धारण करनेको और भीमसेनके बली होनेको शत-शत धिक्कार है! यदि आप मुझपर कृपा करते हैं, अनुग्रह रखते हैं, तो शीघ्र-से-शीघ्र कौरवोंको अपने क्रोधकी आगमें भस्म कर दीजिये।'

द्रौपदी नागिनके समान बिखरे हुए अपने काले-काले लम्बे केशोंको बायें हाथमें लेकर आँखोंमें आँसू भरकर गिड़गिड़ाती हुई कहने लगी—'श्रीकृष्ण! जब मेरे शत्रु संधिका प्रस्ताव करें, कर्तव्यका निश्चय होने लगे, तब दु:शासनके हाथोंसे खींचे गये मेरे इन बालोंको याद रखियेगा। यदि भीमसेन और अर्जुन युद्धसे विमुख हो जायँगे, दीनभाव स्वीकार करके संधि कर लेंगे तो मेरे बूढ़े पिता, मेरे महारथी भाई और अभिमन्युके साथ मेरे पाँचों पुत्र कौरवोंसे युद्ध करेंगे। जबतक दुष्ट दु:शासनके काले हाथको कटकर धूलमें लोटते मैं न देख लूँगी, तबतक मेरा हृदय शान्त नहीं हो सकता। मेरे हृदयमें क्रोधकी आग धधक रही है। तेरह वर्षतक मैंने उसे दबा रखा था, अब मुझसे वह क्लेश नहीं सहा जाता। आज भीमसेनके कातर वचन मेरे कलेजेमें बाणकी तरह चुभ रहे हैं। मेरा कलेजा फटा जा रहा है।' द्रौपदी सिसक-सिसककर रोने लगी। उसका शरीर असह्य वेदनासे काँपने लगा।

श्रीकृष्णने द्रौपदीको धीरज बँधाते हुए कहा—'पांचाली! अब वह दिन दूर नहीं है, जब तुम कौरव-कुलकी स्त्रियोंको रोते-कलपते देखोगी। मैं युधिष्ठिरकी आज्ञासे बड़े-बड़े वीरोंके द्वारा कौरवोंका नाश कराऊँगा। यदि कौरव कालवश होकर मेरी बात नहीं सुनेंगे तो उनके शरीर धूलमें पड़े-पड़े छटपटायेंगे और कुत्ते, सियार, गिद्ध उन्हें नोच-नोचकर खायेंगे। चाहे नक्षत्रोंसहित आकाशमण्डल फटकर गिर पड़े, हिमालय अपनी जगहसे टल जाय, पृथ्वीके सैकड़ों टुकड़े हो जायँ; परंतु मेरा कहना झूठ नहीं हो सकता। रोओ मत, मैं सत्य कहता

हूँ—तुम थोड़े ही दिनोंके बाद देखोगी कि तुम्हारे पतियोंने शत्रुओंको मार डाला है और वे सारी पृथ्वीका एकच्छत्र साम्राज्य भोग रहे हैं।' भगवान् श्रीकृष्णने सबकी सम्मतिसे यात्रा की।

श्रीकृष्ण कौरवोंके पास गये। उनकी कुछ ऐसी ही इच्छा थी, संधि नहीं हुई। युद्धकी तैयारी हुई और दोनों ओरसे लड़कर अनेकों वीरोंने सद्‌गति प्राप्त की। युद्धके समय द्रौपदीका कुछ विशेष वर्णन नहीं मिलता। फिर भी वह युद्धके समय शिविरमें ही रहती थी और दिनभरके थके-माँदे वीरोंकी हर तरहसे सेवा करती थी। ऐसी कथा सुनी गयी है कि एक दिन कौरवोंके अत्यन्त आग्रहसे भीष्मपितामहने पाँच बाणोंसे पाण्डवोंको मारनेकी प्रतिज्ञा कर ली। उस समय श्रीकृष्णके कहनेसे उनके साथ द्रौपदी भीष्मपितामहके पास गयी और उसने भीष्मसे सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद प्राप्त कर लिया।

युद्धके अन्तमें जब दुर्योधन जंघा टूट जानेपर युद्ध-भूमिमें पड़ा हुआ था, तब अश्वत्थामाने रातके समय द्रौपदीके सोते हुए पाँच पुत्रोंकी हत्या कर डाली। द्रौपदीको बड़ा शोक हुआ, उसने कहा—'अश्वत्थामाका वध हुए बिना मैं जीवित नहीं रह सकती।' अर्जुन और भीमसेनने अश्वत्थामाका पीछा किया। श्रीकृष्ण भी उनके साथ गये। अश्वत्थामाने घबराकर ब्रह्मशिर नामक अस्त्रका प्रयोग किया, जिसके उपसंहारका उसे स्वयं ज्ञान नहीं था। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि 'तुम भी ब्रह्मशिर अस्त्रका प्रयोग करके अश्वत्थामाके अस्त्रका तेज कुण्ठित कर दो और फिर दोनोंका उपसंहार कर लो। ऐसा ही किया गया। ब्रह्मशिर नामक अस्त्रके व्यर्थ होनेपर अश्वत्थामा डरकर भागा। उसने उत्तराके गर्भपर अपने अस्त्रका प्रयोग किया, जिससे पाण्डवोंके वंशका बीज ही नष्ट हो जाय। भगवान् श्रीकृष्णने उस गर्भकी रक्षा की। उसी गर्भसे परीक्षित्‌का जन्म हुआ। भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामाको शाप दिया कि 'तुम तीन हजार वर्षतक ऐसे निर्जन देशमें अकेले घूमोगे, जहाँ तुमसे बात करनेवाला

कोई नहीं होगा। तुम्हें कोई छुयेगा नहीं, तुम कोढ़ी हो जाओगे।' भगवान् व्यासने श्रीकृष्णके शापका समर्थन किया।

श्रीमद्भागवतमें कथा आती है कि अर्जुन अश्वत्थामाको बाँधकर द्रौपदीके सामने ले आये। पहले तो द्रौपदी अश्वत्थामाके मारनेपर ही तुली हुई थी; परंतु जब उसने अश्वत्थामाको बँधा हुआ देखा तब उसका हृदय दयासे भर गया। उसने अश्वत्थामाको नमस्कार किया और अर्जुनसे कहा—'छोड़ दो, छोड़ दो; यह ब्राह्मण है, हमसे श्रेष्ठ है। जिन भगवान् द्रोणसे तुमलोगोंने रहस्यके साथ सम्पूर्ण धनुर्वेदका अध्ययन किया था, अस्त्रोंका प्रयोग और उपसंहार सीखा था, वे ही गुरुदेव पुत्रके रूपमें तुम्हारे सामने उपस्थित हैं। तुमलोगोंका वंश बड़ा यशस्वी है, कहीं उसे ब्राह्मणवधका कलंक न लग जाय। ब्राह्मण पूजा करनेके योग्य हैं, वध करनेके योग्य नहीं। मैं अपने पुत्रोंकी मृत्युसे दु:खी होकर रो रही हूँ, अश्वत्थामाकी माता गौतमीको भी मेरे ही समान रोना न पड़े!' धर्मराज युधिष्ठिरने द्रौपदीके वचनोंका समर्थन किया; परंतु भीमसेनने उनका विरोध करके अश्वत्थामाके मारनेका ही समर्थन किया। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'तुम इसके सिरकी मणि निकाल लो, इससे दोनों ही बातें बन जाती हैं।' अर्जुनने वैसा ही किया। अश्वत्थामा उदास होकर चला गया।

भारतीय महायुद्धमें सगे-सम्बन्धियों, हित-मित्रोंकी मृत्युसे युधिष्ठिरको बड़ा शोक हुआ। विशेष करके इसलिये कि इस युद्धका निमित्त उन्हींको बनना पड़ा। वे इतने शोकग्रस्त हो गये कि राज्य करनेकी बात तो अलग रही, मृत व्यक्तियोंकी अन्त्येष्टि-क्रियासे भी निरत हो गये। अर्जुन, भीमसेन, नकुल, सहदेवने समझाया कि 'अब शत्रुओंका नाश हो गया, आप अकण्टक पृथ्वीका राज्य भोगें। परंतु युधिष्ठिरके चित्तमें किसीकी बात नहीं बैठी। कुल-कामिनियोंमें श्रेष्ठ धर्मदर्शिनी द्रौपदी धर्मराजके पास जाकर बड़े मीठे स्वरसे समझाने लगी—'स्वामिन्! तुम्हारे भाई बड़े शोकग्रस्त हो रहे हैं, इन लोगोंने तुम्हारे

साथ कितना कष्ट उठाया है। सर्दी, हवा और अनेकों प्रकारके दुःख सहते समय आप इनसे कहा करते थे कि हम युद्धमें शत्रुओंको जीतकर सारी पृथ्वीका शासन करेंगे। आपके सारे शत्रु मारे गये और अब जब राज्य करनेका समय आया, तब आप इस प्रकार उदास हो गये हैं। क्या इन वीरोंके जीवनमें दुःख-ही-दुःख बदा है? क्या हम अपने जीवनमें सुखका दिन कभी नहीं देखेंगे? यह पृथ्वी वीरोंकी भोग्या कही गयी है। दण्डहीन राजा पृथ्वीका उपभोग नहीं कर सकता। उसकी प्रजा भी सुखसे नहीं रह सकती, इसलिये क्षत्रिय-धर्म और प्रतापका आश्रय लेकर शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना और पृथ्वीका उपभोग करना तो आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। आपमें क्षमाके साथ क्रोध, दानके साथ ग्रहण, भयके साथ अभय और निग्रहके साथ अनुग्रह विद्यमान है। यह राज्य आपको विद्या, दान, संधि, याचना और यज्ञसे नहीं प्राप्त हुआ है। बड़े-बड़े वीरोंको मारकर यह राज्य मिला है, इसपर शासन करना ही आपका कर्तव्य है। आपने बहुत समयतक पृथ्वीका शासन किया है। सारी प्रजा आपको राजाके रूपमें देखनेके लिये लालायित है। मेरे साथ कुन्तीने मुझसे कहा था कि 'विजय प्राप्त होनेके बाद तुम्हारी ये सब विपत्तियाँ दूर हो जायँगी और तुम बड़े सुखसे रहोगी।' सो आप मेरी चिरसंचित आशापर पाला डाल रहे हैं; आप अपने भाइयोंकी बात मानिये, मेरा आग्रह अस्वीकार मत कीजिये। आप मान्धाता और अम्बरीषकी भाँति निखिल भूमण्डलके शासक होकर शोकको छोड़कर धर्मके अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन, प्रजाका पालन, शत्रुओंपर विजय और नाना प्रकारके यज्ञ करके ब्राह्मणोंको भोजन-वस्त्र आदिका दान कीजिये। मेरे स्वामी! हमलोगोंको निराश मत कीजिये।'

द्रौपदीके समझानेके बाद अर्जुन, व्यास, श्रीकृष्ण आदिने समझाया, जिससे युधिष्ठिरका शोक कम हुआ और उन्होंने युद्धमें मृत

व्यक्तियोंका अन्त्येष्टि-संस्कार किया। उनका राजसिंहासनपर अभिषेक हुआ और वे धर्मपूर्वक प्रजा-पालन करने लगे। श्रीकृष्णकी प्रेरणासे द्रौपदीके साथ सभी लोग भीष्मपितामहके पास गये। वहाँ उन्होंने भीष्मपितामहके मुँहसे नाना प्रकारके इतिहास, पुराण, उपदेश सुने। उस समय उपदेशके अथसे इतितक द्रौपदी वहाँ उपस्थित थी।

एक दिन उपदेशके समय ही द्रौपदीको हँसी आ गयी। भीष्मपितामहसे वह छिपी न रही, उन्होंने द्रौपदीसे कहा—'बेटी! मैं जानता हूँ कि तुम बड़ी साध्वी, सदाचारपरायणा और मर्यादामें स्थित हो। तुम्हें अकारण हँसी नहीं आ सकती। हँसनेका कुछ-न-कुछ कारण अवश्य होगा। इस समय तुम्हें किस कारणसे हँसी आयी है?' द्रौपदीने कहा—'दादाजी! उपदेश सुनते-सुनते मेरा मन दूसरी जगह चला गया था। मैं सोचने लगी कि जब दादाजी ऐसे तत्त्वज्ञानी हैं, तब इन्होंने दुःशासनके वस्त्र खींचते समय उसे रोका क्यों नहीं?' जुआ ही क्यों नहीं बंद करा दिया, हँसी इस बातपर आयी कि उस दिन तो बार-बार एक प्रश्न पूछनेपर आपने मेरा उत्तर नहीं दिया। उस दिन आपका ज्ञान न जाने कहाँ चला गया था। आज यह उपदेश सुनकर एकाएक मुझे उस दिनकी बातें याद हो आयीं। इसीसे हँसी आ गयी।' भीष्मपितामहने कहा—'बेटी! उन दिनों मैं कौरवोंका अन्न खाता था; उसी अन्नसे मेरे शरीरका खून और मन बनता था, उसके प्रभावसे मेरे मन-बुद्धि दूषित हो गये थे, इसीसे मैं ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सका। अब युद्धमें अर्जुनके बाणोंके लगनेसे मेरे शरीरका दूषित रक्त निकल गया है और कई दिनोंतक उपवास करनेके कारण मन शुद्ध हो गया। श्रीकृष्णने मेरी बुद्धिमें तत्त्वज्ञान प्रकाशित कर दिया है, इससे मैं इन प्रश्नोंका ठीक-ठीक उत्तर दे रहा हूँ।' द्रौपदीका समाधान हो गया।

भीष्मकी मृत्युके अनन्तर पाण्डवोंने अश्वमेध महायज्ञ किया, उसमें द्रौपदीका प्रधान हाथ था। उसीकी सम्मतिसे उलझे हुए काम

सुलझ जाया करते थे। वह छोटे-से-छोटे कामको भी अपनी दृष्टिके सामने रखती थी। कोई कठिन समस्या उपस्थित होनेपर स्वयं श्रीकृष्णको याद करती थी और पाण्डवोंको भी उन्हें याद करनेको कहती थी। उसके स्मरण करते ही श्रीकृष्ण आ जाते थे और किसी भी विषम समस्याके हल होते विलम्ब नहीं होता था। सच्ची बात कही जाय तो यही कहना होगा कि द्रौपदीका जीवन श्रीकृष्णमय था। वह विपत्तिके दिनोंमें जिस प्रकार श्रीकृष्णकी याद करती थी, वैसे ही सम्पत्तिके दिनोंमें भी श्रीकृष्णकी स्मृतिमें ही तन्मय रहती थी।

धर्मराज युधिष्ठिरने बहुत दिनोंतक पृथ्वीपर राज्य किया। बड़े-बड़े यज्ञ, दान, व्रत आदि करते रहे। कुटुम्बमें पूर्णतः शान्ति थी, प्रजा सुखी थी, न आधि थी न व्याधि। धर्मराजके राज्यमें इस प्रकार धर्म-संस्थापन हो गया था कि लोगोंको सत्ययुग-सा प्रतीत होता था। दुराचारी, व्यभिचारी, चोर, डाकू आदिका अभाव-सा हो गया था। राज्यके किसी अंगमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं थी। सभी अपने-अपने कर्तव्यपालनमें तत्पर थे। द्रौपदी घरके काम-काजके साथ-ही-साथ राज्यके सभी विभागोंपर दृष्टि रखती थी। उसपर राज्यका भार छोड़कर युधिष्ठिर तो निश्चिन्त-से ही रहते थे। उनके जिम्मे केवल एक ही काम था—दान करना। वे बस, दान ही करते रहते थे। द्रौपदीके संगसे बहुतोंमें भगवान्के प्रति श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, भक्तिकी जागृति हुई। संसारके इतिहासमें जितनी सती, साध्वी और भगवद्भक्ता देवियाँ हुई हैं, उनमें द्रौपदीका प्रधान स्थान है। द्रौपदी स्वर्गकी लक्ष्मी थी, राधाकी ही अंशभूत भगवान्की विशेष शक्ति थी। वह धर्मद्रोहियोंके नाश और धर्म-संस्थापनके उद्देश्यसे अवतीर्ण हुई थी। जबतक पृथ्वीपर रही, अपना काम करती रही। जब उसके अवतारका कार्य पूरा हो गया, भगवान् श्रीकृष्ण अपने परिकरोंके साथ अन्तर्धान हो गये, तब द्रौपदीने भी भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए पतियोंका अनुगमन किया और पतिव्रता सती-साध्वी स्त्रियोंके लिये वांछनीय सद्गति प्राप्त की।

हमारी लोहकी जड लेखनी द्रौपदीके गुणगानमें सर्वथा असमर्थ है। भगवान् करें, कोई द्रौपदी-सी नारी पुनः पृथ्वीमें अवतीर्ण होकर सारे संसारमें भगवद्भक्तिका, पति-सेवा, राज्य-व्यवस्था, गृह-प्रबन्ध आदि स्त्रियोंके कर्तव्य-पालनका, आत्म-सम्मान, उत्साह और धैर्य आदि सद्गुणोंका आदर्श स्थापित कर दे और जगत्के धर्मप्रेमियोंको अपने चरण-चिह्नोंपर चलाकर सारे जगत्का कल्याण कर दे। प्रातःस्मरणीया द्रौपदीके स्मरणसे उसका भगवान्के प्रति अविचल विश्वास हमारे हृदयमें भी आवे और हम भी उसीकी भाँति भगवान्पर विश्वास और प्रेम करें—यही वांछनीय है।